H
793.31954 CS
VER-K4

छउ-नृत्य

[सरायकेला का आंचलिक नृत्य]

—गौरीशंकर वर्मा

793.[illegible]45
Ver-Ch.

छउ-नृत्य

[सरायकेला का आँचलिक नृत्य]

लेखक

गौरीशंकर वर्मा

एम० ए० (द्वय), बी० एल०, बी० ए० (ऑनर्स), साहित्यालंकार

भारत सरकार के संगीत-नाटक अकादमी, नई दिल्ली द्वारा प्राप्त
एक हजार रुपये के प्रकाशन-अनुदान से लेखक द्वारा प्रकाशित

मुद्रक
युनाइटेड प्रेस लिमिटेड
बाकरगंज, पटना-४

H
793.31950-CS
VER-K4

[सर्वाधिकार लेखक द्वारा सुरक्षित]

मूल्य-२ रुपये ५० पैसे मात्र

KATAK AKADAMY LIBRARY
Acc. No. 17076
Date 4-2-87
NEW DELHI

प्राप्ति-स्थान
अरुण प्रकाशन
पोस्ट बॉक्स नं० ४
कदमकुआँ, पटना-३
फोन नं० २५५४१

निजी

'सरायकेला का छउ नृत्य' आपके सामने है।

पुस्तक कैसी बन पड़ी, वे ही बता सकते हैं; जिन्हें इस क्षेत्र में गति प्राप्त है। अपनी ओर से मैं इतना ही कह सकता हूँ कि मैंने नृत्य की इस विशेष प्रणाली में जीवन के उस तत्व का दर्शन किया है, जो सुदूर निर्जन सागर-तीर पर उच्छल तरंगों में प्रतिबिम्बित होता है; जो अनाघ्रात वन्य-कुसुम की अरुणिम पलकों पर आलोकित रहता है; जो सांध्य-तारिका के एकान्त तारों में झंकृत होता रहता है। सौन्दर्य की इस मादक मुद्रा को वाणी देने में मैं कहाँ तक सफल हो सका—नहीं जानता! हाँ, यह निश्चय है कि अपनी सहज स्वाभाविकता और ईमानदारी के साथ, मैंने जैसा अनुभव किया, देखा; और उसे देखकर हृदय के तार जिस रूप में झंकृत हुए, उसे सही-सही अभिव्यक्त करने की चेष्टा की है। फिर भी मैं तो एक माध्यम भर हूँ—यदि हमारे कुछ महानुभाव, मित्र एवं सहयोगी हमें अपने आशीर्वाद, स्नेह एवं अपनत्व का सम्बल न प्रदान किये होते; तो सम्भवतः साहित्य-सर्जना के इस पथ पर इतने विश्वास के साथ मैं अग्रसर हो नहीं हो पाता। पुण्य-पाथेय ने ही मेरी गति को बल दिया है, मुझे निरन्तर प्रेरणा प्रदान किया है। मैं उन सभी महानुभावों, मित्रों, एवं सहयोगियों के प्रति हृदय से अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

सन् १९५४-५५ की बात है। मैं सरायकेला में बिहार सरकार के जन-सम्पर्क एवं प्रचार अधिकारी के रूप में काम करने के निमित्त पदस्थापित किया गया था। सिंहभूमि जिलान्तर्गत विशेषतः सरायकेला और खरसावाँ क्षेत्र में 'छउ नृत्य' को लोकप्रियता प्राप्त है। यहीं मुझे यह अवसर मिला कि मैं 'छउ नृत्य' की विशेषताओं को हृदयंगम करूँ।

मैं स्वाभाविक रूप से इस ओर आकृष्ट हुआ। बिहार सरकार के तत्कालीन जन-सम्पर्क-निर्देशक श्री रासबिहारी लाल, आई. ए. एस. ने इस कार्य में मुझे अत्यधिक प्रोत्साहित किया। यदि इस कार्य में मुझे उनसे प्रशंसा न मिली होती, तो शायद इस पुस्तक का प्रणयन सम्भव ही न होता। मैं यह स्पष्ट कह सकता हूँ कि आज ऐसे लोगों की बहुत ही कमी है, जो अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों को ऐसे प्रयास में इतना प्रोत्साहन देते हों, जितना श्री लाल ने मुझे दिया। अतएव मैं सबसे अधिक उनका ही आभार मानता हूँ। उनके आशीर्वादों के लिए, अपनी श्रद्धा का पुष्प किस प्रकार समर्पित करूँ, नहीं जानता! विश्वास है, मूक अभ्यर्थना ही उस कार्य को करने में समर्थ होगी, जिसे शब्दों की शक्ति छू नहीं सकी है। सरायकेला के तत्कालीन पत्रकार, साहित्यिक एवं कवि श्री राम रौशन रसूलपुरी ने भी मुझे इस पुस्तक के लिये बड़ी सहायता दी है। मेरे मन पर इनकी सहायता एवं प्रोत्साहन का भी यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। मैं श्री रसूलपुरी के प्रति भी अपनी श्रद्धा निवेदित करता हूँ।

इस पुस्तक की पांडुलिपि १९५६ में ही प्रायः तैयार हो गयी थी। किन्तु चाह कर भी मैं उस समय इसका प्रकाशन नहीं कर सका। इस सम्बन्ध में पटना-स्थित प्रसिद्ध नृत्य-संस्थान भारतीय नृत्य कला मंदिर के संस्थापक-निर्देशक श्री हरि उप्पल से प्राप्त अनायास सहायता का मैं विशेष आभार मानता हूँ। श्री उप्पल ने इस पुस्तक की पाण्डुलिपि देखी। देखकर बड़े प्रसन्न हुए और तत्क्षण ही उसके प्रकाशन के लिए दिल्ली-स्थित संगीत नाटक अकादमी से आर्थिक अनुदान प्राप्त करने के निमित्त आवेदन देने का मुझे सुझाव दिया। उन्होंने स्वयं भी एक प्रमाणपत्र देकर मुझे कृतार्थ किया। श्री हरि उप्पल एक नृत्य-विशेषज्ञ तो हैं ही, साथ ही बड़े उत्कट नृत्य-प्रेमी भी हैं। यदि उनके हृदय में कला के प्रति ऐसा नैसर्गिक प्रेम न होता, तो निश्चय था कि उनकी अना-

यास सहायता मेरे लिए दुर्लभ रहती। श्री उत्पल जी के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

दिल्ली-स्थित, भारत सरकार द्वारा संस्थापित संगीत नाटक अकादमी ने अत्यन्त उदारतापूर्वक मुझे इस पुस्तक के प्रकाशन के लिये एक हजार रुपये का अनुदान दिया है, इसके लिये मैं अकादमी का कृतज्ञ हूँ। मैं आशा करता हूँ कि अकादमी के उद्देश्यों के अनुकूल लोक-नृत्य एवं लोक-कलाओं के क्षेत्र में मैं कुछ और काम करने में सफल हो सकूँगा।

इस पुस्तक के मुद्रण में बिहार के एक प्रसिद्ध कवि एवं साहित्यिक श्री रामचन्द्र शर्मा 'किशोर' से बड़ी उदार सहायता मिली है। आपने जिस मित्र-भाव से मेरी सहायता की, मैं उसके लिये उनको सादर धन्यवाद देता हूँ। बिहार के सुविख्यात कवि और साहित्यिक श्री गोवर्द्धन प्रसाद सदय ने भी इस कार्य में बड़ी सहायता की है। मैं उनकी सहृदयता का कायल हूँ। साथ ही, हम लोग जिस अपनत्व की डोर में बँधे हैं, वह कृतज्ञता-ज्ञापन की औपचारिकता की सीमा-रेखा से परे है। मैं उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापित कर, इस शीतल छाँव में कोई आँच आने नहीं देना चाहता।

मेरा विचार है कि मैं 'छउ नृत्य' सम्बन्धी पुस्तिका अन्य देशी तथा विदेशी भाषाओं में भी प्रकाशित करूँ। पाठकों की ओर से यदि मुझे प्रोत्साहन मिला, तो निश्चय ही मैं अपने विचारों को मूर्त रूप दे सकूँगा।

—गौरीशंकर वर्मा

पटना
१ फरवरी, १९६४

भा
र
ती
य

नृत्य-कला

छउ नृत्य का आधार

'छउ नृत्य' की समुचित विवेचना के लिए, हमें भारतीय नृत्य-कला के कुछ शास्त्रीय सिद्धान्तों को भी ध्यान में रखना है। यह ठीक है कि नृत्य मानस की एक स्वाभाविक एवं जन्मजात प्रवृत्ति है, फिर भी प्रत्येक प्रक्रिया पर देश, काल और स्थानीय लोक-दर्शन का प्रभाव पड़ता ही है। हमारा उद्देश्य यहाँ यह देखना है कि 'छउ नृत्य' की प्रवृत्तियों का भारतीय नृत्य-कला के मौलिक सिद्धान्तों से कहाँ तक सादृश्य है।

इसके निमित्त हम संक्षेप में भारतीय नाट्य-शास्त्रों की मौलिक शास्त्रीय मान्यताओं की खोज करेंगे। साथ ही, यह भी देखेंगे कि इन मान्यताओं का, नाट्य के विभिन्न अंगों में किस प्रकार अनुसरण किया जाता है। नृत्य का विकास, किसी देश की सभ्यता के साथ होता है। भारत की सभ्यता तो बहुत पुरानी है; इसलिए हमारी नाट्य-कला भी संस्कृति का प्राचीनतम प्रस्फुटन है। ऋग्वेद का रचना-काल १५०० ई० पू० से पहले माना जाता है और उनमें नृत्य एवं वाद्य-यंत्रों का उल्लेख भी है।

भारत धर्म-प्रधान देश है, और धर्म के मूल में भय भी निहित है। प्रकृति के नाना रूपों से डर कर उसे रिझाने के कुछ उपाय आदिम मानव ने सोचा। भूकम्प, ज्वालामुखी, अनावृष्टि, अतिवृष्टि, अग्नि, पाला, ओला, तूफान, हिंस्र पशु के प्रकोप को अदृश्य असुरों का प्रकोप और उत्पीड़न समझा गया और इनसे त्राण पाने के लिए इन्हें प्रसन्न करना आवश्यक था। फलतः, मंत्र-तंत्र, भाव-भंगिमा और हस्तपादादिक की बहुविध मुद्राओं से उनकी पूजा होने लगी। उनका ऐसा विश्वास था कि यदि असुर प्रसन्न रहेंगे, तो जीवों को कष्ट न देंगे। साथ ही, इन्द्र, वरुण, मरुत आदि प्रकृति के विविध स्वरूपों की उपासना देवताओं के रूप में आरम्भ हुई। इस उपासना में इन स्वाभाविक मुद्राओं और भाव-भंगिमाओं के साथ ही, कुछ विचित्र और दुरूह शब्दों या अक्षरों के उच्चारण भी होने लगे। इस तरह 'संगीत' का समावेश हुआ। हमारे यहाँ कहा जाता है कि 'ओम्' शब्द में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का संगीत छिपा हुआ है। इस तरह, क्रमशः मानव-समाज के धार्मिक विचारों के विकास के साथ-साथ, इन कलाओं का विकास भी होता गया और एक अलग तंत्र-शास्त्र ही प्रस्तुत हो गया।

वेदों और तंत्रों के युग के बाद त्रिदेव : ब्रह्मा, विष्णु और महेश : की साकार उपासना का युग आया। और तब धर्म की मौलिक प्रेरणा, 'भय' के स्थान पर प्रेम, आनन्द तथा मोक्ष की भावना आई ; अर्थात्, भारतीय मानव-समाज में साकारोपासना का युग आया और 'अनिष्ट से निराकरण' के स्थान पर 'अभीष्ट की उपासना' का भाव व्याप्त गया। मंगलमयी प्रवृत्तियों के तीन रूप—त्रिदेव—माने गए। फलतः, गायन और नर्त्तन की मौलिक भाव-धारा में भी परिवर्त्तन आये। धीरे-धीरे 'शक्ति' तथा कृष्ण आदि देवताओं के साकार-उपासना-युग के आते-आते, संगीत-कला का भी उत्कर्ष हुआ। फलतः इस समय तक संगीत तथा नृत्य के अनेक ग्रन्थ भी बन चुके।

'नाट्य-शास्त्र' इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। 'अभिनय दर्पण' दूसरा प्रसिद्ध ग्रन्थ है। नाट्य-शास्त्र के प्रणेता 'भरत' को, कुछ लोग बुद्ध के समय से कुछ पहले का मानते हैं। पीछे ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग धनंजय का 'दश रूपक' भी बहुत प्रसिद्ध हुआ। 'दश रूपक' और 'नाट्य-शास्त्र' दोनों ही में नाटक तथा रस के विश्लेषण के साथ नृत्य की भी चर्चा है। भारतीय नाट्य में नृत्य की पग-पग पर अपेक्षा है। नृत्य का विस्तृत विवरण 'नाट्य-शास्त्र' में है, और 'दश रूपक' में नाट्य-सिद्धान्तों की विवेचना है।

नाट्य-शास्त्र के पिता भरत का उल्लेख मनुसंहिता और पाणिनि में भी मिलता है। महाकवि कालिदास ने भरत को स्वर्गलोक का नाट्यकार एवं कलाकार बतलाया है। दूसरे महानाट्यकार भवभूति ने भरत को संगीत-शास्त्र और नृत्य-शास्त्र का लेखक कहा है। इस तरह हम देखते हैं कि भरत का नाट्य-शास्त्र ही भारतीय नृत्य-कला का मान्य शास्त्र है।

नाट्य-शास्त्र के अध्ययन से पता लगता है कि प्राचीन भारत में नाटक और रंगमंच का अत्यधिक प्रभाव था, यद्यपि मनु ने अपनी संहिता में नृत्य को बुरा कहा है। कुछ लोग कहते हैं कि मनु ने सिर्फ ब्राह्मणों के लिए ही नृत्य का निषेध किया था। जो भी हो, कौटिल्य ने अपने अर्थ-शास्त्र में लिखा है कि नृत्यकार का व्यवसाय काफी लाभदायक था और नर्त्तकों की संख्या उस समय काफी हो चली थी।

भारतीय नृत्यकला और छउ नृत्य-पद्धति

भरत के अनुसार, उन्हें नाट्य-शास्त्र और नाट्य-कला का ज्ञान स्वर्गलोक से हुआ, जहाँ देवता और अप्सरायें कलाकार होती थीं। नाट्य-कला के आविर्भाव के सम्बन्ध में कहा गया है कि अत्याचार और बर्बरतापूर्ण शासन से त्राण पाने के लिए स्वर्ग के शासक इन्द्र और दूसरे देवताओं ने ब्रह्मा की सलाह इस आसुरि शक्ति के विनाश के लिए

माँगी। उन्होंने ब्रह्मा से इस प्रकार के शक्तिशाली मनोरंजन के आविष्कार के लिए प्रार्थना की, जिससे लोक-शिक्षण के साथ-ही-साथ अनिष्टकारी शक्तियों का दमन भी हो। उन्होंने सर्वसाधारण, विशेषतः अशिक्षितों और शूद्रों के लिए उस आमोद-प्रमोद की बोधगम्यता एवं सरलता की भी अपेक्षा की। ब्रह्मा ने चारों वेद बुलाए और अपनी इच्छा प्रकट की कि वे जन-गण-मन के मनोरंजन के निमित्त एक नए वेद की रचना करना चाहते हैं। फलतः, ऋग्वेद ने संवाद, सामवेद ने संगीत, यजुर्वेद ने अभिनय और अथर्ववेद ने आवेश दिए। चारों मिलाकर पंचम वेद—नाट्यशास्त्र-प्रस्तुत हुआ और ब्रह्मा के आशीर्वाद से इस नाट्य शास्त्र के आचार्य भरत हुए। उन्होंने सुरासुर-संघर्ष-नाट्य प्रस्तुत किया। कुछ लोगों के अनुसार 'लक्ष्मी स्वयंवर' उनका प्रथम नाटक था। इसमें समुद्र-मंथन के बाद, अमृत के लिए सुरों और असुरों में संघर्ष तथा सुरों की विजय के बाद लक्ष्मी और नारायण का विवाह है। किन्तु, इस नाटक का प्रभाव असुरों पर बुरा पड़ा। उन्होंने विद्रोह कर दिया और नाट्य-प्रदर्शन के विरुद्ध बहुतेरे ने षड्यंत्र किए। किन्तु, देवताओं ने उन्हें असफल कर दिया। और तब देवताओं ने भगवान शिव को रिझाने की चेष्टा की और इसके निमित्त कैलाशधाम में नाट्य-प्रदर्शन करना चाहा। इस नाटक का नाम था 'त्रिपुरासुर'। इसमें शिव और असुरों के राजा त्रिपुरासुर का द्वंद्व-युद्ध दिखाया गया, जिसमें त्रिपुरासुर की मृत्यु भी त्रिशूल से हुई। प्रसन्न हो शिव ने नाट्य में नृत्य के समावेश की भी सलाह दी। भगवान शिव ने स्वयं नृत्य-योजनाएँ प्रस्तुत कीं। जब भरत ने नृत्य के प्रकरण प्रस्तुत किए, तब ऋषियों ने नृत्य-प्रकरणों को समाविष्ट करने का अभिप्राय पूछा। उनके कथनानुसार, नृत्य से कथा-वस्तु का कोई लगाव नहीं था और न उससे कथावस्तु का विशेष स्पष्टीकरण ही होता था, अतएव नृत्य की योजना व्यर्थ थी। भरत के उत्तरानुसार, नृत्य-योजनाओं से नाट्य-प्रदर्शन अधिक रुचिकर एवं आकर्षक हो जाता है।

कहा जाता है कि त्रिपुरासुर नाटक में असुरों के विरुद्ध कुछ उक्तियाँ थीं, जिसका विरोध उन्होंने किया और साथ ही भारत के नाट्य प्रदर्शनों को रोकना भी चाहा। भारत ने फलस्वरूप ऐसे नाटकों की योजना की, जो सुर और असुर दोनों को संतोषप्रद हों। ब्रह्मा की आज्ञा से अभियंता विश्वकर्मा ने उन्हें एक सर्वकालिक रंगमंच तैयार कर दिया।

अपने नाट्यशास्त्र में भारत ने तीन प्रकार से रंगमंच की योजना की है। पहला प्रकार वर्तुलाकार था और इसकी लम्बाई ५४ गज थी। प्राचीन भारत में ऐसे नाट्यमंच, मंदिरों के पीछे लगे रहते थे और देवताओं के प्रयोजन के थे। दूसरे प्रकार में लम्बाई ३२ गज और चौड़ाई १६ गज थी। यह राजघरानों और रईसों के लिए था। तीसरा त्रिभुजाकार था और इसकी प्रत्येक भुजा १६ गज की थी। प्रत्येक नाट्यशाला का अर्द्धांश दर्शकों के लिए था और अगली कतार ब्राह्मणों की थी। यह उजले कपड़े से घिरा था। इसके बाद क्षत्रिय का था जो लाल कपड़े से घिरा था। क्षत्रियों के बाद पीले घेरे में वैश्य और उनके बाद नीले घेरों में शूद्र बैठते। इन चारों जातियों से परे अन्य लोगों के लिए भी जगहें होती थीं। नाट्यशाला के दूसरे अर्द्धभाग में कलाकार और संगीतज्ञ रहते थे। इसके पिछले भाग को रंगशीर्ष कहते थे। यह पूरे नाट्यस्थल का अष्टमांश था। इसमें नाट्यशास्त्र के प्रणेता ब्रह्मा की पूजा होती। इसमें दरवाजे लगे दो द्वार रहते, जो शृंगार-कक्ष से जुटे रहते। एक या दो दरवाजे अथवा द्वार रंगमंच से मिलते थे।

भारत के अनुसार, नाट्य-प्रदर्शन के निमित्त कुछ आवश्यक मान्यताएँ: १. संगीत-वाद्यों की उचित व्यवस्था; २. संगीतज्ञों के लिए निर्दिष्ट स्थान; ३. संगीत का प्रारम्भ; ४. वाद्य-यंत्रों का समुचित पर्यवेक्षण; ५. स्वर-गीत और तंतुवाद्यों में पूर्ण सामंजस्य; ६. संगीत के वाद्य-यंत्रों के व्यवहार में लाने के निश्चित नियम; ७. विभिन्न वाद्यों में

पूर्ण सामंजस्य द्वारा सम्मिलित वाद्य को प्रस्तुत करना; ८. संगीत के नियम और ९. ईश-प्रार्थना।

नाट्य-प्रदर्शन के पहले भी कुछ क्रियाएँ थीं, जैसे—(क) स्तोत्रपाठ (ख) पूजा (ग) संगीत (घ) व्याख्यात्मक टिप्पणियाँ, स्वागत-भाषण।

नृत्य के विभाग

नृत्य के तीन विभाग हैं : १. नाट्य २. नृत्त और ३. नृत्य। नाट्य रसमूलक अवस्थानुकृति है; नृत्त लय और ताल मूलक तथा नृत्य भावमूलक अवस्थानुकृति है।

नाट्य की परिभाषा इस प्रकार है :

अवस्थानुकृतिनाट्यं रूपं दृश्यतयोच्यते
रूपकं तत्समारोपाद् दशधैव रसाश्रयम्
—दश रूपक १.७.

अर्थात्, एक निर्दिष्ट समय तक अपनी वास्तविक सत्ता को सर्वथा भूलकर अपने आपको अनुकार्य की सत्ता में लीन कर देना ही नाट्य है। इसे हम अवस्थानुकृति कहेंगे। इसके चार साधन हैं। १. आंगिक, इन्द्रियों के संचालन, अर्थात् मुद्राओं द्वारा ; २. वाचिक, अर्थात् स्वर, वाणी या भाषा के अनुकरण से ; ३. आहार्य, अर्थात् वेशभूषा तथा स्वरूप का अनुकरण ; ४. सात्विक, अर्थात् स्तम्भ, रोमांच आदि द्वारा अनुकार्य के सात्विक भावों का अनुकरण। सात्विक आठ हैं :

१. स्तम्भ : अंग-संचालन की शक्ति का लोप ;
२. प्रलय : संज्ञा का लोप ;
३. रोमांच : रोयें खड़े होना ;
४. स्वेद : पसीना चलना ;
५. वैवर्ण्य : चेहरे का रंग बदलना ;
६. वेपथु : कंपकंपी होना ;
७. अश्रु : अश्रु-धारा गिराना, या रोना ; और
८. वैस्वर्य : कंठस्वर में विकार या परिवर्त्तन।

नृत्त

'गीतं वाद्यं नृत्तं च त्रयं संगीतमुच्यते।'

संगीत में गीत, वाद्य और नृत्य तीनों आते हैं। संगीत को 'उपवेद' की संज्ञा दी गई है।

ताल संगीत का स्वाभाविक गुण है। जैसे सम्पूर्ण विश्व के सभी कार्यों में एक व्यवस्था या नियम है, वैसे ही संगीत में उस व्यवस्था का नाम 'ताल' है। किन्तु, यह व्यवस्था या ताल किसी भावविशेष की, स्वरों के माध्यम से, की गई अनुकृति है। ताल और नृत्य, दोनों के उद्देश्य एक ही हैं। किसी भाव विशेष के उद्रेक होने पर एक विशेष मानसिक व्यवस्था की अनुभूति होती है। ताल उसे ही स्वरों में बाँध कर प्रकट करता है। यही नृत्त है। उसी मानसिक अवस्था की अनुभूति का प्रकटीकरण जब मुद्राओं से होता है, तो उसे नृत्य कहते हैं। इस तरह नृत्य और नृत्त एक-दूसरे के पूरक हैं। नृत्य की मुद्राओं के प्रदर्शन के लिए हस्तपादादि के संचालनों, कटाक्षों तथा मुद्राओं का उपयोग तो होता है, किन्तु पैरों से ही उसकी मूल उत्पत्ति मानी गई है।

वाद्य के बाद लय का उदय होता है। 'संगीत दामोदर' में कहा गया है कि—

'गीतादुत्थिप्रते वाद्यं वाद्यःदुत्थितेलयः,
लय ताल समारब्धं ततो नृत्यं प्रवर्त्तते।'

अर्थात्, गीत यदि संगीत का शिरोभाग है, तो वाद्य हृदय है तथा नृत्य पैर है। संगीत के नृत्य, गीत और वाद्य में विभक्त होने पर भी प्रत्येक अंग में ताल काम करता है। ताल का काम है, संगीत के सभी अंगों में व्यवस्था रखना। इस तरह नृत्य, अर्थात्; मुद्राओं से जिस अवस्था का बोध होता है, नृत्त अर्थात् ताल की अनुकृति, अंगों के

लयात्मक संचालन से उसी अवस्था का बोध होता है। नर्त्तक के लिए मुद्राओं तथा अंग-संचालन दोनों समानरूपेण आवश्यक हैं। कहा जा सकता है कि मुद्राओं से भावविशेष प्रकट होते हैं और अंग-संचालन से भावानुकूल शारीरिक स्थिति। दोनों मिलकर एक-दूसरे के अर्थ को स्पष्ट करते हैं। नाट्य, अर्थात् अभिनय कार्यानुकृति है। अतएव, नृत्य में इसका स्थान पीछे आना चाहिए। गायक के लिए वाद्यों से जिस प्रकार प्रेरणा मिलती है, नर्त्तक को भी उसी प्रकार ताल अथवा वाद्य-संगीत से प्रेरणा मिलती है।

ताल के दस प्राण हैं :

काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति और प्रस्तार। इनके विस्तार में जाना हमारे लिए यहाँ आवश्यक नहीं।

नृत्य

मुद्राओं द्वारा भाव-प्रकाशन नृत्य है। नटन रसमूलक अवस्थानुकृति है, और नृत्य भावमूलक। अतएव, नाट्य और नृत्य दोनों ही में अवस्थानुकृतियाँ हैं। नाट्य और नृत्य दोनों ही प्रथमतः शारीरिक क्रियाएँ हैं, किन्तु नृत्य 'वाचिक' नहीं होता। फिर भी, कहा जा सकता है कि नटन एक व्यापक अवस्थानुकृति है और इस अवस्थाविशेष में सम्पूर्ण शरीर एक साथ एक विशेष रसानुकूल मुद्रा धारण कर लेता है। किन्तु, नृत्य में यह व्यापकता अथवा सम्पूर्णता नहीं, बल्कि इसके स्थान पर शरीर के बदले अवयवों, अँगुलियों, नयन, ग्रीवा से विशेषतः, कर द्वारा मौन-कल्पना-चित्र के प्रकरण जुटाये जाते हैं; और एक-एक मुद्रा बारी-बारी से बहुत से उपकरण जुटा कर एक कथा-चित्र प्रस्तुत कर देती है।

नृत्य के दो भेद हैं—१. मधुर अथवा लास्य २. उद्धत अथवा तांडव। कोमल अथवा स्त्रियोचित भाव-प्रदर्शन को मधुर, और पुरुष अथवा पुरुषोचित भाव-प्रदर्शनों को उद्धत नृत्य कहते हैं। ये भाव

प्रेमातिरेक

प्रकृति-पुरुष

रसों (चित्त की एक व्यापक स्थिति) के अधीन हैं। रस आठ हैं: शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स और अद्भुत। कुछ लोग 'शान्त' को नवां रस मानते हैं। प्रत्येक रस के एक-एक स्थायी भाव भी हैं—रति, प्रेम, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, घृणा, आश्चर्य, शान्ति आदि। उदाहरणार्थ, प्रेम का स्थायी भाव रति अथवा प्रेम-प्रदर्शन है, किन्तु प्रेम-प्रदर्शन की कई अवस्थाओं में शोक, हास, क्रोध आदि भी तो हो सकते हैं। इन अप्रधान भावों को संचारी या व्यभिचारी भाव कहते हैं। जैसे समुद्र में बुलबुले हैं, वैसे ही स्थायी अथवा प्रधान में संचारी अथवा अप्रधान भाव हैं। संचारी भाव क्रमशः ये हैं—निर्वेद (अपने से घृणा) ग्लानि, शंका, श्रम, धृति (संतोष) जड़ता, हर्ष, दैन्य, उग्रता, चिन्ता, त्रास, असूया अथवा ईर्ष्या, आमर्ष (आपे से बाहर होना), गर्व, स्मृति, मरण, मद, सुप्त, निद्रा, विबोध (जागना या जगाया जाना), क्रीड़ा, अपस्मार (पागलपन का दौरा), मोह, मति, आलस्य, आवेग, तर्क अवहित्था, (झेंप), व्याधि, उन्माद, विषाद, औत्सुक्य, चापल्य इत्यादि। भावों के साथ उपभाव भी होते हैं। किसी भाव की सूचना मन में होने पर कुछ बाह्य विकार शरीर के अंग-प्रत्यंग पर प्रकट हो जाते हैं; ये अनुभाव हैं। निर्वेद, शंका आदि इनके उदाहरण हैं। कुछ भाव केवल स्त्रियों को ही शोभा देते हैं। स्त्री सुलभ भाव तीन प्रकार के हैं—१. शरीरज २. अयत्नज और ३. स्वभावज।

शरीरज भाव तीन हैं—भाव, हाव और हेला। ये अपने आप होने वाले अथवा शारीरिक भावों की विशेषताएँ—'शोभा' हैं। भावशुद्ध विमल प्रेमाकांक्षा है; हाव में उस प्रेमाकांक्षा के प्रति सजगता के कारण आँख और भौं आदि में कुछ विकार प्रकट होते हैं; और हेला में बलवती शृंगार चेष्टा है। अयत्नज भाव सात हैं—शोभा,

सौन्दर्य, वासना, तारुण्य तथा प्रियमिलन की आकांक्षा के कारण अंग-प्रत्यंग में एक विचित्र-सी कमनीयता को (१) 'शोभा' कहते हैं। काम-विकार के आवेग से यही शोभा (२) 'कान्ति' हो जाती है। किन्तु, जब भाव में अधिक प्राबल्य न हो, तब वह माधुर्य है। 'कान्ति' के विस्तार को (३) 'दीप्ति' कहते हैं और जब भाव में घबराहट न दिखाई पड़े तब (४) 'प्रागल्भ' है। किसी भी भावविशेष की अवस्था में सौजन्य न खोना (५) 'औदार्य' है तथा चंचलता या अन्यथस्थितता को न आने देना (६) 'धैर्य' है। अपनी वाणी या शारीरिक चेष्टाओं से अपने प्रिय के अनुकरण को (७) 'लीला' कहते हैं। स्वभावज भाव १० हैं। ऊपर लिखे अयत्नज के साथ भाव भी बहुत कुछ स्वभावजनित होते हैं। इनके (शोभा) अतिरिक्त और भी हैं। जैसे, प्रियमिलन की स्थिति में शरीर की सारी चेष्टाओं एवं बोली में एक प्रकार का तात्कालिक सरस और सुन्दर परिवर्तन होता है, उसे (२) 'विलास' कहते हैं। वेशविन्यास की विचित्रता को (३) 'विच्छित्त' कहते हैं। जल्दी में आभूषण गलत स्थान पर पहन लेने को (४) 'विभ्रम' कहते हैं। क्रोध, करुणा, हर्ष तथा भय को एक स्थान पर प्रकट करना (५) 'किलकिंचित' है। प्रिय के नाम या उससे संबंधित किसी वस्तु के नामोल्लेख मात्र से उसी भाव में लीन होना (६) 'मोट्टायित' है। प्रिय की अधिक वाचालता या अग्रसरता पर बनावटी क्रोध (७) 'कुट्टमित' है। अभिमान न होने पर भी प्रिय का अनादर (८) 'विब्बोक' है। अंगों को कोमलता से सजाना (९) 'ललित' है तथा मिलन-स्थिति में भी लाजवश चुप रहना (१०) 'विहृत' है।

इस तरह नाट्य, नृत्त और नृत्य तीनों मिलकर नृत्य-रूपक प्रस्तुत करते हैं।

'छउ' नृत्य की विशिष्टताएँ

सरायकेला के 'छउ' नृत्य का आधार भी भरत नाट्यम के सूत्र ही हैं। इसका स्वरूप भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं के अनुकूल है और उसकी प्रवृत्तियाँ भी भारतवर्ष की विशिष्ट नृत्य-पद्धतियों से सादृश्य रखती हैं। इसमें भारतीय नृत्य-रूपक के तीनों तत्त्व नाट्य, नृत्त और नृत्य विद्यमान हैं। सरायकेला की 'छउ' नृत्य-पद्धति इन्हीं तीनों तत्त्वों को लेकर नृत्य-रूपकों की योजना प्रस्तुत करती है। भरत नाट्यम के सिद्धान्तों के अनुकूल, यहाँ भी नृत्य योजनाओं का उद्देश्य नाट्यप्रदर्शन को और रुचिकर तथा आकर्षक बनाना ही है। 'छउ' नृत्य में भी भरत के ही अनुसार नाट्यप्रदर्शन के निमित्त कुछ आवश्यक मान्यताएँ हैं, जैसे—यहाँ संगीतवाद्यों की उचित व्यवस्था, संगीतज्ञों के लिए निर्दिष्ट स्थान, संगीत का प्रारम्भ, वाद्य-यंत्रों का समुचित पर्यवेक्षण, संगीत के वाद्य-यंत्रों को व्यवहार में लाने के निश्चित नियम, विभिन्न वाद्यों में पूर्ण सामंजस्य द्वारा सम्मिलित वाद्य का प्रस्तुतीकरण। संगीत के कुछ अपने निर्दिष्ट नियम हैं, जैसे – ईश-प्रार्थना। किन्तु, 'छउ' के समावेश के कारण एक प्रभेद यह है कि यहाँ तंतु-वाद्यों का पूर्ण सामंजस्य स्वर-संगीत से नहीं हो सकता; क्योंकि 'छउ' अथवा मुखावरण के व्यवहार के स्वर-संगीत यहाँ सम्भव नहीं हैं। फलतः, यहाँ तंतु-वाद्यों से सामंजस्य नृत्य अथवा लय और ताल-मूलक अवस्थानुकृतियों से किया जाता है। मुद्राओं के सहारे नृत्यों से भावनाओं के संकेत तो दिये ही जाते हैं, साथ ही नृत्त द्वारा अंग-संचालनों से भावानुकूल शारीरिक स्पन्दनों का भी आभास मिलता है। फिर भी, सरायकेला नृत्य-पद्धति में 'छउ' अथवा मुखावरण के प्रयोग से इन 'छउ' नृत्य-रूपकों की प्रवृत्तियों में एक स्पष्ट तथा क्रांतिकारी अन्तर भी स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। यह ठीक है कि 'छउ' नृत्य नाट्य, नृत्त और नृत्य को ही

लेकर चले हैं, फिर भी जैसा कि अभी कहा गया है कि मुखावरण के प्रयोग से स्वर-संगीत असंभव है, वैसे ही उँगुलियों या एक हद तक ग्रीवा को छोड़कर नयन एवं भ्रू-भंगिमा का भी प्रयोग असंभव ही है। फलतः, मुद्राएँ केवल उँगुलियों से ही बन पाती हैं। इसके साथ ही, एक और भी कठिनाई यह है कि इस नृत्य में पद-संचालन में ही नृत्त का प्रदर्शन होता है और कलाकार का अधिक ध्यान कटि से निम्नस्थ अंग पर ही केन्द्रित रहता है। वह पद-चापों द्वारा ही नृत्त-कौशल दिखलाता है। फलतः, उँगुलियों का मुद्राओं के लिए इतना उपयोग नहीं होता, जितना शास्त्रीय परम्परा के अनुसार अपेक्षित है। जहाँ तक नाट्य का सम्बन्ध है, यहाँ भी 'छऊ' के प्रयोग से कुछ अन्तर आ जाता है; क्योंकि वाचिक अभिनय का बिलकुल लोप हो जाता है। आंगिक अभिनय में भी नेत्र, व्यवहार में नहीं आ पाते। सच पूछा जाय तो 'छऊ' नृत्य-पद्धति में मूलतः पद-चाप ही प्रधान और आंगुलिक तथा हस्त-मुद्राओं का प्रयोग नूतन-सा ही है और यह अन्य शास्त्रीय पद्धतियों के प्रभाव के कारण समाविष्ट हुआ है।

किन्तु, इन सभी विभिन्नताओं के होते हुए भी, 'छऊ' नृत्य की मूल प्रेरणा भारतीय संस्कृति का ही स्रोत है। अन्य भारतीय नृत्यों के समान इसकी मौलिक प्रेरणा भारतीय संस्कृति के प्राचीनतम रूप से ही मिली है। कहा जाता है कि शंकराचार्य-युगीन शैव-मत ही इसकी भूमिका है। नृत्य आरम्भ होने के पहले यात्राघट निकलता है। 'यात्राघट' पुनीत माना जाता है और इसका वाहक लाल वस्त्र धारण करता है। उसका मुख भी रक्तिम कर दिया जाता है। 'यात्राघट'-वाहक नाचते हुए चलता है। इसके साथ ही 'कलिकाघट' भी दूसरा वाहक ले चलता है, जिसमें शिवप्रिया काली का नृत्य होता है। इसका वाहक काले वस्त्र और सिन्दूर के तिलक लेता है। उसका रूप-विन्यास रौद्र तथा भयानक होता है।

'छउ' नृत्य की कथावस्तु और भी धार्मिक है। जैसे....दुर्योधन-ऊरुभंग नृत्य, कालिया-दमन नृत्य, कच-देवयानी नृत्य, मधु-कैटभ नृत्य, महिषासुर-वध नृत्य, वासुकी-गरुड़ नृत्य, समुद्र-मंथन नृत्य, दशावतार नृत्य, शिव-पार्वती, सूर्य-नमस्कार, तांडव, आरती प्रभृति नृत्य हैं। महादेव शिव और जगन्माता पार्वती का पारस्परिक प्रेम का प्रदर्शन शिवपार्वती नृत्य में तो होता है, किन्तु नर्त्तक इस बात के लिए सदैव सचेष्ट रहते हैं कि कहीं भी दर्शकों के हृदय में अश्लीलता या वासना के भाव न उठ पाये। शैली की दृष्टि से भी 'छउ' नृत्य भारतीय नृत्य-कला की ही एक विशिष्ट शाखा है। भावना-प्रधान भारतीय संस्कृति के अनुरूप मुखोश या मुखावरण के उपयोग से इस नृत्य में यौगिक प्रभाव स्पष्ट है; क्योंकि यहाँ योग के ही अनुसार साधना की एकाग्रता के लिए मौन चेष्टा अपेक्षित है और जिस तरह भारतीय संस्कृति में सिद्धि प्राप्ति के लिए, साध्य में अपने को लीन कर देना पड़ता है, वैसे ही भारतीय नृत्य में मुखावरण के उपयोग से नर्त्तक अनायास ही अपने नायक में आत्मसात कर देता है और इस तरह भंगिमाओं तथा स्वर के निषिद्ध होने के कारण, अपेक्षित साध्य भाव का प्रस्फुटन आहार्य, नृत्य और नृत्त द्वारा ही किया जाता है। इस प्रक्रिया के चलते नर्त्तक स्वभावतः नायक का ही ध्यान करता है और उसी के रंग में रंगकर सराबोर हो जाता है। जैसे—राम राम जपते हुए भक्त राममय हो सकता है, आग सुलगते-सुलगते जैसे अंगार पैदा करती है, वैसे ही नर्त्तक की प्रत्येक प्रक्रिया उसे नायकमय बना देती है। ऐसा लगता है, शिव का तांडव ही 'छउ' नृत्य शैली का प्राचीन रूप है, जिसमें साधना स्वर से न होकर शरीर से होती है। यहाँ साधना का माध्यम स्वर और मुख नहीं, आत्मा और आत्मा को धारण करनेवाला शरीर है। 'छउ' नृत्य की इस मूकता में इसकी सार्वभौमिकता निहित है।

इस तरह हम देखते हैं कि यद्यपि 'छउ' नृत्य के उद्देश्य भारतीय परम्परा के अनुकूल हैं; किन्तु इसमें भक्ति की अपेक्षा योग का प्राधान्य है। मूलतः, यह शाक्त मतानुकूल है, वैष्णव नहीं। फलतः, शृंगार से अधिक वीर रस है। 'छउ' नृत्य शैली में 'वीर' रस ही मुख्य है, यद्यपि शृंगार ही रसों का राजा कहलाता है। भक्ति और योग दोनों ही साधना की पद्धतियाँ हैं; किन्तु भक्ति में भक्त नारी-भाव से उपास्य की साधना करता है, और योग में अनुरूप भाव से। भक्त अपने उपास्य की विरहिणी है, योगी अपने उपास्य के विराटत्व का एक कण मात्र। विरहिणी नारी अपने प्रियतम को अपने यौवन के उन्माद, अपनी मुखश्री के ऐश्वर्य, भंगिमाओं, चितवन तथा नयनों के बाण से पाना चाहती है, योगी कठोर शारीरिक प्रक्रियाओं से अपने क्षुद्र अहं को विराट में लीन कर देता है। इसीलिए, जहाँ एक ओर भक्ति में साधना जीवन पर्यन्त होती हुई भी बराबर प्रियतम के वियोग में विछुड़ती ही रहती है, योग में वैसी असहायता नहीं। क्योंकि, इसमें तो अहं का विस्तार ही हो सकता है, उसमें कुछ विशेष दीनता का भाव नहीं, वह तो विराट का अंश है ही, उसी में मिलना है। 'छउ' नृत्य की शैली यौगिक है। अतएव, लास्य भाव का अभाव है। इसीलिए, कहते हैं यह वियोगिनी नहीं। 'छउ' नृत्य मूलतः उद्धत अथवा तांडव है और यही कारण है कि यहाँ 'नृत्य का नृत्त' ही प्रधान है।

'छउ' नृत्य की शैली की विशिष्टताओं के बाद संक्षिप्ततः, इसके व्याकरण पर भी भारतीय नृत्य-शास्त्र के प्रभाव का विवेचन अपेक्षित है। भारतीय नृत्य-परंपरा के अनुरूप 'छउ' नृत्य का उद्देश्य ब्रह्मानन्द की प्राप्ति है। शिव शाश्वत नर्त्तक हैं—नटराज! उनकी मुद्राओं और भंगिमाओं की समष्टि ही विश्व है, उनकी वाणी संसार की सभी भाषाओं का सार है, उनका आहार्य-परिधान चन्द्र और

तारे हैं। रौद्र और भयानक स्थितियों से ही सम्पूर्ण सृष्टि की संज्ञा का भास मिलता है। नृत्य पूर्णतः क्रियाहीन व्यापार है और इसमें प्रकृति, पुरुष और नारी में जो कुछ भी सुन्दर है, उसके प्रति एक अनायास निहित आकर्षण विद्यमान है। इसलिए, भारतीय अपने रूपकों का अभिनय नृत्य द्वारा ही करते हैं। किन्तु, 'छउ' नृत्य की शास्त्रीय परम्परा ताल, संगीत, मुद्राओं से भी स्पष्ट है। भरत मुनि के नाट्य शास्त्र के मूल सिद्धान्त और नन्दीकेश्वर के 'अभिनय' दर्पण ही इसकी आधार-शिलाएँ हैं; फिर भी एक विशिष्ट स्थानीय पद्धति होने के नाते इसकी अपनी विशेषताएँ भी हैं। छोटे-छोटे पांच-छः वर्ष के बच्चों को पांच-छः वर्षों तक नियमबद्ध रूप से विभिन्न नृत्य-गतियाँ और छत्तीस प्रकार के उपालयों की शिक्षा दी जाती है; क्योंकि इस पूर्ण शिक्षण के अभाव में रंगमंच के योग्य कोई नर्त्तक नहीं माना जाता। 'छउ' नृत्य के ताल भी शास्त्रीय हैं, जैसे आरती नृत्य....१० मात्राएँ; सुरफकताल हर पार्वती नृत्य....दादरा-६ मात्राएं; शाबर या शिकारी नृत्य....चौताल—१२ मात्राएँ; चन्द्रभाग नृत्य....त्रिताल—१६ मात्राएँ; फूल बसन्त नृत्य....झपताल—१० मात्राएँ; नाविक नृत्य....जटताल ७ और ८ मात्राएँ। शास्त्रीय तालों के प्रभाव के कारण ही नृत्य का प्रारंभ धीरे-धीरे होता है। यद्यपि शनैः शनैः गति बढ़ती जाती है, पहले दोगुनी तब चौगुनी। यहीं पर स्थानीय विशेषता नजर आती है। फिर जैसा कि देखा जा चुका है, मुखावरण के प्रयोग से मौखिक मुद्राओं या भंगिमाओं के प्रयोग की संभावनाएँ कम रह जाती हैं और भावाभिव्यंजन के लिए इसकी पूर्त्ति तन अवयवों और पदचापों के प्रदर्शनों से होता है। किन्तु, इस नृत्त का आधार है भारत नाट्यम। नृत्त की प्रधानता 'छउ' नृत्य में भी कथा-कली नृत्य के ही समान है। 'छउ' नृत्य की संगीत-योजना भी शास्त्रीय पद्धति पर आधारित है। 'फूल बसंत' नृत्य में 'बहार'

राग अपनाया गया है। 'छउ' नृत्य के वाद्य विशेष हैं....नगाड़ा, धोल, चचंरी, मृदंग, मुहरी या शहनाई, सिंग, मदनभेरी, करताल और बांसुरी। सूक्ष्म विवेचन से लगता है कि वाद्य स्थानीय वस्तुओं से निर्मित हैं और इस विषय में, शास्त्रीय नृत्यों से इसकी अपनी विशेषता है। जहाँ एक ओर मृदंग और नगाड़ा वीर रस का संचार करते हैं, 'छउ' नृत्य में प्राण तो बांसुरी ही भरता है; क्योंकि नर्त्तक की गति बांसुरी की लय में विभोर होने पर ही आती है।

'छउ' नृत्य-प्रदर्शन में और भी शास्त्रीय मान्यताओं की स्पष्ट छाप है। नाट्यशाला चतुर्भुजाकार की होती है और वह घिरी रहती है। वाद्य वृन्दों के लिए पीछे की ओर सुनिर्दिष्ट स्थान रहता है। आगे की कतार विशिष्ट अतिथियों के लिए, एक ओर स्त्रियों के लिए भी जगह रहती है और शेष जगहों में जन-साधारण रहते हैं। वाद्य-संगीत का प्रारम्भ ही नृत्य की भूमिका है और नृत्त के पदचापों और तंतुवाद्यों में पूर्ण सामंजस्य रहता है। वाद्य-संगीत की समुचित योजना के अभाव में 'छउ' नृत्य असंभव है। ये सभी मान्यताएँ शास्त्रीय हैं।

अन्त में 'छउ' नृत्य की लोक नृत्यात्मकता भी इसकी महत्वपूर्ण विशेषता है। लोक-नृत्यों में एक सहज, स्वाभाविक गति होती है, सहज स्वाभाविक बोधगम्यता। इसमें लौकिक उत्स पाया जाता है, वैयक्तिक उत्सर्ग नहीं। कारण है कि 'छउ' नृत्य बुद्धिवादी वर्ग की आलोचना की वस्तु नहीं, बल्कि जनसाधारण के आनन्द की सामग्री है। यह सतत् विकासी है। 'छउ' नृत्य-सूची में धार्मिक, सामाजिक और प्राकृतिक सभी योजनाएँ हैं। 'छउ' नृत्य रात्रिपर्यन्त तो चलता है ही, कई दिनों तक लगातार भी इसका प्रदर्शन होता है। फलतः, यह बुद्धिवादी की अपेक्षा आनन्दवादी अधिक है और शास्त्रीय मान्यताएँ साधन मात्र हैं।

वीर-मुद्रा

तितली

'छउ' नृत्य का समीक्षात्मक विवरण

जैसे पत्ते हिलते हैं, सरायकेला के लोग नाचते हैं। नृत्य यहाँ की संस्कृति है। यह कला नहीं, यहाँ की आत्मा है। अचानक किसी गाँव में आप पायेंगे, घर से आगे के चबूतरे पर दो लड़के खड़े हैं। एक के हाथ में बाँसुरी है और दोनों पैर एक-दूसरे को काटते हुए तथा हाथ की बाँसुरी अधरों को चूमती हुई-सी। दूसरा लड़का पहले के कंधों पर लटका हुआ और भुजाएँ फली—जैसे किसी के आलिंगन की आतुर प्रतीक्षा में हों। दोनों ही अपनी मुद्राओं में जैसे आत्म-विस्मृत। इस तरह घर-बाहर, खेत-खलिहान, उद्यान, वन-प्रान्तर जहाँ कहीं भी आप जायँ, दिन-रात आपको नृत्य के प्रदर्शन दिखायी पड़ेंगे। यहाँ नृत्य, पूजा की सामग्री है और विशेष पर्वों एवं धार्मिक अवसरों पर 'छउ' नृत्य का आयोजन वैसे ही साधारण है, जैसे किसी और के जशन, आनन्द अथवा जलसे की व्यवस्था अन्य जगहों में हो सकती है।

सरायकेला १९५० ई० तक देशी रियासत रहा है। स्वभावतया यह नवीन भारतीय सांस्कृतिक धाराओं से अलग रहा। इसकी स्थानीय संस्कृति की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। बिहार के वर्तमान सिंहभूमि जिले के मध्य में अवस्थित यहाँ की स्थानीय संस्कृति कई भाषा-भाषियों के मेल से बनी है। स्थानीय भाषाएँ हैं कुर्माली, हो, संथाली इत्यादि। बिहार के सुदूर दक्षिण, उड़ीसा और बंगाल के निकटवर्ती इस अंचल में उड़िया, बंगला और हिन्दी भाषाएँ एक साथ बोली जाती हैं। फलतः, यहाँ के लोग एक साथ कई भाषाएँ बोलते हैं और उनके पर्व-त्योहारों पर भी एक-दूसरे की

छाप है। यहाँ के गैर आदिवासी जनता में, आदिवासी देवी 'माँ-गौरी' पूजी जाती है। फलतः, यहाँ की स्थानीय संस्कृति में बहुरूपता है और 'छऊ' नृत्य में भी यह बहुरूपता दृष्टिगोचर होती है। यही कारण है कि 'छऊ' नृत्य एक ही साथ लोक-नृत्य भी है और शास्त्रीय भी। लोक-नृत्य की परख इससे होती है कि इस नृत्य में भंगिमाओं से अधिक जोर शारीरिक गतियों और आन्दोलनों पर है। साथ ही, भारतीय नाट्यशास्त्र से मुद्राएँ और भंगिमाएँ भी ली गयी हैं। इन दोनों प्रवृत्तियों के मिश्रण से 'छऊ' नृत्य में न तो शास्त्रीय दुरूहता है, न लोक-नृत्यों की यह प्रवृत्ति जिससे एक ही क्रिया बार-बार दुहरायी जाय और न शास्त्रीय व्यायाम। 'छऊ' नृत्य का उद्देश्य है सहज प्रदर्शन।

यह सरलता 'छऊ'नृत्य के विकास के अध्ययन से भी स्पष्ट हो जाता है। नृत्य दक्षिण बिहार के अरण्य पर्वतमय पठारों में चिरकाल से लोक जीवन का विशिष्ट अंग रहा है। आदिवासी नृत्यों की प्रेरणा प्रकृति से ही मिली है और इन नृत्यों में प्राकृतिक सरलता रही और आदिम जातियों की नृत्य-शैलियाँ शास्त्रीय कला की सूक्ष्मता को ग्रहण करने से वंचित रहीं। 'छऊ' नृत्य उसी प्रेरणा की देन है, किन्तु उसके गैर आदिवासी प्रेमियों ने उसपर शास्त्रीय छाप भी दे दी है।

कहते हैं, छऊ नृत्य का उद्भव सिंहभूमि के पोराहाट राज्य के सैनिक शिविरों में हुआ। यह पोराहाट राज्यवंश अपनी पूर्व पीढ़ियों के शासन-काल में अंग्रेजों के अधीन नहीं हुआ था। इस सघन अरण्य अंचल में मुगलकालीन विजेताओं की भी नहीं चली थी। कहते हैं इस राजपूत राजवंश का आगमन तत्कालीन स्थानीय आदिम जातियों (भुइयाँ और हो लोगों) के गृहयुद्ध के चलते हुआ। किंवदन्ती है कि जगन्नाथपुर स्थित सिमहा वंश के राजा श्री छत्रधारी सिंह को 'हो' लोगों ने मार डाला। पोराहाट के राजा श्री रणजीत सिंह गद्दी छोड़कर भागते हुए

जोधपुर की राह से दिल्ली पहुँचे। ये घुड़सवारी में दक्ष थे और उनकी घुड़सवारी की प्रशिक्षण-कला से प्रसन्न होकर बादशाह अकबर ने उन्हें अपनी छावनी में आश्रय दिया। कुछ ही दिनों में वे वहाँ राजा मानसिंह के प्रिय-पात्र हो गए। अनन्तर जब राजा मानसिंह ने सम्राट् अकबर की आज्ञा से बंगाल विजय के लिए कूच किया, तो उनके साथ श्री रणजीत सिंह भी आये और ओरछा के राजा रामचन्द्र के साथ मानसिंह की संधि हो जाने पर राजा रामचन्द्र की अनुमति से १५९० ई० के लगभग पुनः पोराहाट की गद्दी पर अधिकार कर लिया। कहते हैं, उस काल में राजा मानसिंह की छावनी कुछ काल के लिए सिंहभूमि क्षेत्र में रुकी और उनके सहचरों ने यहाँ की वन्यजातियों के विविध लोकनृत्यों को देखा और उस ओर अच्छी तरह आकृष्ट हुए। फौज के नायक ने श्री रणजीत सिंह के विचारों से सहमत होकर छावनी में थकान मिटाने एवं मनोविनोद के लिए एक नृत्य-समारोह का आयोजन किया। फौजी वातावरण में फौजी नायकों को नर्त्तक बनने में संकोच होता, किन्तु मनोरंजन की चाह भी गहरी थी। बन्दूक और तीर चलानेवाले सेना-नायक, सुन्दरियों के वेश में नयनों के तीर कैसे चलाते? इस संकोच व्रीड़ा को मिटाने के लिए निश्चय किया गया कि प्रत्येक अभिनेता अपने व्यक्तित्व को छिपाने के निमित्त चेहरे पर आवरण का व्यवहार करें। इसके निमित्त शूर-वीरोचित मिट्टी की रूप-आकृतियाँ बनवायी गईं, जिससे आकृष्ट होकर छावनी के सामन्त सरदार अभिनेताओं ने श्री रणजीत सिंह के निर्देशन में तलवार द्वारा द्वन्द्व युद्ध के रूप में खंडा-नृत्य (खंग नृत्य) का प्रदर्शन किया। छावनी के चले जाने पर श्री रणजीत सिंह ने इस खंडा नृत्य को पोराहाट में राजकीय वार्षिक समारोह के रूप में प्रतिष्ठित किया। साथ ही उसके विभिन्न दृश्यों का उन्नयन और विकास भी किया। पोराहाट के अन्तिम राजा महाराजा अर्जुन सिंह हुए। इनके शासनकाल तक खंडा नृत्य का निर्वाह होता गया। १८५७ के प्रथम स्वाधीनता युद्ध के अवसर पर, बिहार में

जब महाराज कुँअर सिंह ने बगावत कर दी और अंग्रेजों के खिलाफ स्वाधीनता का झंडा फहरा दिया, तब उनकी देखा-देखी, विद्रोह का आह्वान करते हुए महाराज अर्जुन सिंह ने भी पोराहाट को स्वाधीन घोषित कर दिया। दुर्भाग्यवश तत्कालीन सरायकेला के राजा इनके विरुद्ध थे। इस आपसी फूट के चलते १८५८ ई० में पोराहाट राज्य का पतन हो गया और महाराज अर्जुन सिंह अंग्रेजों के बन्दी के रूप में आजीवन बनारस में निर्वासित कर दिये गए। वहीं १८६० ई० में उनकी मृत्यु हुई। स्वतंत्रता प्रेमी वीर और योग्य शासक होने के साथ ही महाराज अर्जुन सिंह विद्या-व्यसनी और कला-प्रेमी भी थे। उन्होंने छऊ नृत्य की परम्परा को एक धार्मिक मर्यादा प्रदान किया और इसे अपने सैनिक मनोरंजन का साधन भी बनाया। १७ वीं शताब्दी में पोराहाट के राजा श्री पुरुषोत्तम सिंह ने अपने पुत्र कुमार विक्रम सिंह को सरायकेला के इलाके खरपोस में दिए। श्री विक्रम सिंह और उनके पुत्र श्री नरहरि सिंह ने सरायकेला राज्य की नींव डाली। वंश-परम्परा के अनुकूल सरायकेला राजवंश में भी छऊ नृत्य की प्रथा प्रचलित हुई। फिर बाद के लोगों ने चैत्रापर्व से इसका सम्बन्ध जोड़कर इसे एक धार्मिक नृत्य का स्थान प्रदान किया। सरायकेला में वंशानुगत राजाओं का प्रोत्साहन प्राप्त कर छऊ नृत्य उत्तरोत्तर विकसित होता गया। राज-परिवार के अतिरिक्त जन-समाज में भी कुछ ऐसे कलाकार, अभिनेता या नर्त्तक उत्पन्न हुए, जिन्होंने इसे मयूरभंज आदि रियासतों के दरबार में प्रदर्शित कर वहाँ के राजाओं का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। इस दिशा में सर्वश्री नारायण दास विद्याधर हुंज, उपेन्द्र बिस्वाल, नन्दी घोष साहु, दीन बन्धु महा, हरिहर सिंह, राजेन्द्र पटनायक आदि छऊ नृत्य के आचार्य का नाम आदरणीय है। इनमें से श्री उपेन्द्र बिस्वाल ने उत्तरीन शाही अखाड़ा नाम से एक नृत्य-प्रतिष्ठान को प्रतिष्ठित किया। उपेन्द्र बिस्वाल के समकक्ष सहयोगी थे श्री पीताम्बर पटनायक। उपेन्द्र बिस्वाल तत्कालीन मयूरभंज राज में चले गए और आजीवन वहीं रहे। किन्तु

उनके प्रमुख शिष्य श्री राजेन्द्र पटनायक ने अपनी नृत्यकला पारंगतता के कारण विशेष रूप से कीर्त्ति और ऐश्वर्य का अर्जन किया। श्री राजेन्द्र पटनायक अपने सुयोग्य पिता श्री दिगम्बर पटनायक के योग्य पुत्र थे और इनके पुत्र श्री बन बिहारी पटनायक भी आज के नर्त्तकों में योग्य और कुशल माने जाते हैं तथा उन्हें 'कविशेखर' भी कहा जाता है। कहा जाता है कि राजेन्द्र पटनायक को भी मयूरभंज राज्य का निमंत्रण मिला। किन्तु, वे अपनी मातृभूमि छोड़ने को तैयार नहीं थे। ऐसा माना जाता है कि वर्तमान 'छउ' नृत्य के पद-कौशल और लय, तान एवं सौन्दर्य की प्रतिष्ठा श्री राजेन्द्र पटनायक ने ही की थी। आज भी 'कविशेखर' बन बिहारी पटनायक अपनी वंशगत परम्परा के निर्वाह में काफी परिश्रम और रुचि दिखलाते हैं। पूर्ववर्ती नर्त्तकों में श्री दीनबन्धु दास और श्री हरिहर सिंह ने खंडा नृत्य की नवीन शैली की प्रतिष्ठा की।

इस नृत्य को वर्तमान विकसित रूप प्रदान करने का श्रेय सराय-केला के वर्त्तमान राजा साहब श्री आदित्य प्रताप सिंह के स्वर्गीय अनुज श्री विजय प्रताप सिंह देव को है। स्वर्गीय कुमार विजय, नर्त्तक न होते हुए भी, कला-मर्मज्ञ और उसके प्रणेता रहे। उन्होंने 'छउ' नृत्य की मौलिक प्रवृत्तियों को नवीन कला-भंगियों से सुसज्जित कर, इसे नवीन रूप-माधुर्य दिया। आपके ही नेतृत्व में छउ नृत्य के कलाकारों का एक मंडल यूरप गया और अपने नृत्य-कौशल से वहाँ की जनता को विमुग्ध किया। इन्होंने पौराणिक, सामाजिक, प्राकृतिक आदि विविध कथानकों के आधार पर 'छउ' नृत्य की नवीन प्रतिष्ठा की। कलाकारों में छउ-नृत्य उन्नायक थे स्वर्गीय राजकुमार शुभेन्द्र नारायण सिंह देव। इनमें नृत्य की अपूर्व प्रतिभा थी और आप अपने काल के सर्व प्रमुख नर्त्तक थे। दुर्भाग्य वश अपने यौवन के प्रारम्भ में ही नदी में अचानक डूब जाने से 'छउ' नृत्य का यह कुशल कलाकार चल बसा। आपसे 'छउ' नृत्य को बहुत-सी आशाएँ थीं। स्वर्गीय शुभेन्द्र के भ्राता राजकुमार

ब्रजेन्द्र नारायण सिंह देव भी कुशल नर्तक थे। राजकुमार हरेन्द्र नारायण सिंह देव भी छउ नृत्य के उत्कृष्ट कलाकार हैं। इनके अतिरिक्त, सरायकेला के राजा श्रीमान आदित्य प्रताप सिंह देव और उनके सुपुत्र टिकैयत श्री नृपेन्द्र नारायण सिंह का देव भी 'छउ' नृत्य के प्रति असाधारण प्रेम और रुचि उल्लेखनीय हैं। वर्तमान नर्तकों में श्री वन बिहारी पटनायक यौवन की देहली पार कर चुके हैं; फिर भी 'छउ' नृत्य के लिए उनका अनुराग अचल है। उनकी पारिवारिक परिस्थिति कला-प्रेम में बाधक है, किन्तु उनकी साधना अडिग है। उनके अतिरिक्त, सर्वश्री केदार नाथ केरासार, श्री लिंग राज महन्ती, श्री मंगलाचरण महन्ती, श्री अभिमन्यु डुंग, श्री गोवर्द्धन डुंग आदि प्रमुख हैं। श्री केदार नाथ केरासार बिहार के संगीत, नृत्य और अभिनय-परिषद् के सदस्य भी हैं। इन कलाकारों तथा अन्य प्रेमियों के प्रयत्न से अभी सरायकेला में 'विजय लक्ष्मी कला भवन' संस्था भी 'छउ' नृत्य के विकास के लिए भरपूर चेष्टा कर रही है। इसके मंत्री हैं, श्री भोलानाथ कर। अन्य प्रेमियों में श्री अमरेन्द्र प्रताप सिंह देव भी प्रमुख हैं। आपने नृत्य में संगीत-मूलक तालों का निर्देशन किया तथा सदैव उसमें लीन भी रहते हैं।

इस तरह यह स्पष्ट है कि 'छउ' नृत्य को राजकीय आश्रय प्राप्त हुआ और इसके नियमित रूप से वार्षिक आयोजन हुए। फलतः, इस नृत्य का प्रचार व्यापक रूप से हुआ और गाँव-गाँव में यह कला फल गई। किन्तु, हाल तक अपने रूप-सौन्दर्य में अधिक विकास न कर सका और आज भी पूर्ण संगठित नहीं कहा जा सकता, यद्यपि यह कला नेताओं और जनता की दृष्टि में आ चुकी है। कुछ लोग 'छउ' नृत्य का अर्थ छावनी नृत्य लगाते हैं, क्योंकि इसका जन्म सैनिक शिविरों में हुआ था। कुछ लोगों का कथन है कि 'छउ' का अर्थ है 'छाया', क्योंकि इसके व्यवहार से पात्रों की छाया-सी

'रंगमंच' पर उतर आती है, उनका एक चित्र मिल जाता है और नर्त्तक इस छाया में छिप जाता है। जो भी हो, खंडा नृत्य ही इस नृत्य की मौलिक वस्तु है, जिसे यहाँ 'परिखंडा' नृत्य कहते हैं और उसमें खड्ग कौशल ही प्रमुख है। मारू के बजते ही योद्धा नर्त्तक वृत्तों में घूमते हुए युद्ध करते हैं। १९१२ ई० के जनवरी में सम्राट् पंचम जार्ज और सम्राज्ञी के स्वागत में भी कलकत्ते में इस नृत्य का आयोजन हुआ था।

छऊ नृत्य का आयोजन खुले आकाश के नीचे होता है, जहाँ एक ऊँची सतह पर इसका प्रदर्शन होता है। ऊँची सतह पर रंगमंच के आयोजन का उद्देश्य यह है कि दर्शक मण्डली नर्त्तकों के पाद-कौशल को अच्छी तरह देख सके। किन्तु कभी-कभी ऐसी ऊँची सतह की व्यवस्था नहीं होती, वहाँ समतल पर नृत्य होता है। किन्तु, रंगमंच पर प्रकाश की पर्याप्त व्यवस्था रहती है और इसकी एक तरफ एक रथाकार रंगमंच रहता है, जिसमें मखमली पर्दे लगे रहते हैं। वाद्य-मण्डली एक तरफ रहती है और नगाड़े की आवाज सुनते ही दर्शकों का तांता लग जाता है। चैत्र पर्व-समारोह में दूर-दूर से ग्रामीण देखने आते हैं और वहाँ ग्रामीण 'अखाड़े' भी इसमें भाग लेते हैं। छऊ नृत्य-संस्थाओं को अखाड़ा कहते हैं। जिस तरह मल्ल-युद्ध के अखाड़े होते हैं, वैसे ही वीर रस पूर्ण छऊ नृत्य के भी अखाड़े ही होते हैं, क्योंकि छऊ नृत्य में शारीरिक कसरत ही होता है। छऊ नृत्य रात भर चलता है, और कई दिनों तक प्रत्येक रात इसका आयोजन लगातार चलता है। नृत्य के प्रारम्भ होने के पहले वाद्य संगीत होता है। जिसकी ध्वनि सुनते ही नर्त्तक अखाड़े में उतर आते हैं, नृत्य शुरू होते ही संगीत धीमा हो जाता है और नर्त्तक अपनी वीरोचित मुद्रा में अवतीर्ण होते हैं। नर्त्तकों का परिधान, शिर के पहनावे तथा अन्य आभूषण सुरुचि से चुने जाते हैं। इसमें इस बात का ध्यान रखा जाता है कि परिधान में सामंजस्य और मर्यादा बनी रहे। वह बिना अत्यधिक भड़कीला हुए भी चित्ताकर्षक एवं पात्रोचित रहे।

'छउ' नृत्य-समारोह की भूमिका तेरह दिन आगे से ही तैयार होती है। बारह विभिन्न जातियों भगत या पुरोहित प्रतिदिन धार्मिक पूजादि की क्रियाएँ सम्पादित करते हैं। तेली, पंसारी, बनिया प्रभृति जातियों के लोग पुरोहित का काम करते हैं। उनमें एक नायक होता है, जिसे 'धमंत करणी' अर्थात् धर्म-सम्पादक कहते हैं। प्रधान भगत को पट-भगत कहते हैं। ये प्रतिदिन एकत्रित होकर नगर के मध्य स्थित शिव-मन्दिर के निकट नाई से दाढ़ी कटाते हैं और जनेऊ धारण करते हैं तथा प्रत्येक भगत का गोत्र 'धमंत करणी' द्वारा अनायास शिव गोत्र में बदल दिया जाता है—कम-से-कम इन दिनों के लिए। सब और अनुष्ठान होते हैं। और ये सभी नटराज शिव की स्तुति के लिए किए जाते हैं। प्रतिदिन ये बाजे-गाने के साथ नगर के मध्य-स्थित एक शिव-मन्दिर से दूसरे शिव-मन्दिर में जाते हैं। इस यात्रा में वाद्य के लिए एक विशेष ताल का उपयोग किया जाता है। एक शिव-भक्त नटराज का पताका साथ लेकर चलता है। नदी में स्नान करने के बाद, कुछ धार्मिक क्रियाएँ होती हैं। फिर शिव-मन्दिर में लौट आते हैं और तब प्रधान नृत्य-स्थल पर पहुँचते हैं। २५ वें चैत्र तक यह रोज होता है। उस दिन केवल रंगशाला से परिचय मात्र होता है। शिव के पताका के नीचे नृत्य होता है। इतने दिन तक भगत लोग 'हविशस्वी' रहते हैं और अरवा चावल भर दिन में केवल एक बार खाते हैं। दूसरे दिन 'यात्राघट' प्रारम्भ होता है। और यही नृत्य की असली भूमिका है। 'यात्राघट' की भी एक छोटी-सी भूमिका है, जिसे बालक बहुत पसन्द करते हैं। इसको 'माल गड़ा गड़ी' कहते हैं। भगत लोग शरीर के बल बायें से दायें उलटते हुए नदी के किनारे से रंगमंच तक आते हैं। पहले इसमें हरिजन भाग लेते हैं और उसके पीछे भगत लोग। साथ ही, ये 'महारुद्र महादेव' काशी-विश्वनाथ' की ध्वनि भी जोर-जोर से करते हैं। इसके बाद, फिर सभी 'भज घाट' स्नान करने जाते हैं और यात्राघट की तैयारी करते हैं। घट कहते हैं मिट्टी के छोटे बर्त्तन को, जिसे तेली जाति का एक भगत ढोता है।

मृगया

युद्धोन्मत्त

यात्राघट के भगत को भर दिन निराहार रहना पड़ता है। इसे 'घटवाली' कहते हैं। पूजा के बाद 'घटवाली' पवित्र जल से लबालब घट को सर पर रखकर नाचते हुए आता है। 'घटवाली' का मुख सिन्दुर से लाल किया रहता है। मुख के साथ ही गर्दन, हाथ और शरीर के खुले अंग भी रंग दिए जाते हैं। इसके अतिरिक्त, कर्णफूल, बाजू तथा चूड़ियाँ भी पहनते हैं। पैरों में घुंघरू बांध दिया जाता है। और शिव-प्रिय अर्कमाली फूल की मालाएँ भी पहनाई जाती हैं। पूजा के बाद, घटवाली को दूसरे भगत नदी किनारे की ओर अग्रसर होने के लिए सहायता देते हैं। यह यात्राघट घटवाली शक्ति का रूपक है। समतल पर पहुँचने पर स्थानीय वाद्य–माहुरी, (सहनाई), नगाड़ा, ढाक, ढोल एक अपूर्व स्वर-संचार करते हैं। और घटवाली को जैसे मूर्च्छाना-सी हो जाती है। इस वाद्य का ताल भी अनोखा होता है। पहले तो उसमें एक भनभनाहट होती है, जिसे 'गुड़गुड़ी' कहते हैं, फिर क्रमशः साधारण और क्लिष्ट ताल बजते हैं। यह ताल रचना के अनुकूल है.... पहले विनाश, फिर सृष्टि। यात्राघट, नृत्य स्थिति में रंगशाला तक की यात्रा करता है। राह में स्थान-स्थान पर पूजा-अभ्यार्थना होती है। फिर वे शिव-मन्दिर में जाते हैं और वहाँ घट उतारकर बन्द कपाटों के भीतर रख दिया जाता है। यह पवित्र घट शिवलिंग के निकट चार दिनों के लिए रख दिया जाता है। इन चार दिनों में प्रत्येक रात नृत्य का आयोजन होता है। इस अनुष्ठान का सम्बन्ध नटराज शिव और शैवमत से है। माँ शक्ति जल के छींटों से नटराज शिव को निद्रा से जगाती है और नटराज की मुद्रा देती है। भारतीय मत के अनुसार, लाल सृष्टि का रंग है और यात्रा घट का रंग भी लाल ही है। यात्राघट के जुलूस के बाद, शिव-पताका हटा दिया जाता है और तब नृत्य-क्रिया शुरू होती है।

दूसरी रात 'वृन्दावनी' की है। भगतों की दैनिक क्रियाओं के बाद, महाकपि हनुमान आता है और वह रावण के मधुवन का ध्वंस

करता है। महाकपि भी बड़े आनन्द से नाचते हुए आता है और फिर मन्दिर में लौट जाता है। वह एक विशेष शिव-मन्दिर से नाचते हुए अन्य मन्दिरों में जाता है। यह नृत्य भी बच्चों को अतीव रुचिकर है।

तीसरी रात 'गरियाभार' का भ्रमण होता है, जिसमें श्री कृष्ण और गोपियों की एक उच्छृंखल लीला दिखलाई जाती है। जब गोपिकाएँ यमुना-स्नान के लिए जाती हैं, श्रीकृष्ण उनकी भुजाओं से जलभरी गगरियाँ छीन लेने की कोशिश करते हैं। यह 'गरियाभार' सारी रात चलता है। प्रातःकाल, 'भार' के पवित्र जल को वितरित किया जाता है और प्रत्येक परिवार इसे ग्रहण करता है।

चौथी रात 'कालिकाघट' का अनुष्ठान होता है। इसे 'कामनाघट' भी कहते हैं। अर्द्धरात्री के बाद, घट का आशा, वांछा और कांक्षा की कामना-रूपी जल से भरा हुआ आना ही चाहिए। कामनाघट भी यात्राघट का पूरक है। अन्तर यह है कि यहाँ उपासक ही कालिका की भूमिका अदा करता है और उसका शृंगार लाल रंग से न होकर काले रंग से होता है। इस घट को नगरस्थित शिवमन्दिर में ले जाया जाता है और वहाँ शिवलिंग के निकट गाड़ दिया जाता है। फिर दूसरे साल ही निकाला जाता है। एक साल के अनन्तर जितना जल बचता है, उसी के अनुसार उसका भगतों में वितरण कर दिया जाता है।

छउ-नृत्य-शैली : तुलनात्मक समीक्षा

भारतवर्ष में शास्त्रीय नृत्य के तीन चार प्रतिष्ठित शैलियाँ हैं, जिनसे हम संक्षेप में 'छउ' नृत्य की तुलना करेंगे। वे हैं—कथाकली भारत नाट्यम, मणिपुरी और कथक।

कथाकली, भारतनाट्यम और मणिपुरी, इन तीनों का आधार भरत मुनि का नाट्य शास्त्र है; किन्तु, उनकी प्रणाली में अन्तर है। कथक नृत्य व्यवहारिक रूप से समस्त उत्तर भारत में प्रचलित है। 'छउ' नृत्य का आधार भी नाट्य शास्त्र ही है, किन्तु इसकी अपनी भी विशिष्ट प्रणाली है।

कथक नृत्य अपने मौलिक रूप में दरबारी चीज थी और इसका प्रवेश भारत के मुस्लिम शासन के साथ-साथ हुआ। इसमें भारतीय और फारसी तत्त्वों का समन्वय स्पष्ट है। भारतीय कला, अनुभूतियों को संयम के साथ प्रकट करती है। उसमें व्यक्ति की आत्मा की चमक है, वासना का व्यापार नहीं। मुस्लिम प्रभाव के चलते कथक नृत्य मूलतः वासना के व्यापार का साधन बन गया। किन्तु, इसका सुखद प्रभाव भी पड़ा। इसने नृत्य-कला को बौद्धिक पर्वतों से उतार कर जन-जीवन के धरातल पर ला दिया। लोक नृत्य को लोग फिर से समझने लगे; नाच पसन्द करने लगे; क्योंकि कोई भी कला, मानव की मौलिक प्रवृत्तियों को ही लेकर चलती है। अन्तर होता है—उसकी नीति और उसके जीवन दर्शन में, तथा व्यवहारिक संस्कृति में। यही भेद, नृत्य के स्वरूप को बदल देता है। कथक नृत्य बिहार, उत्तर प्रदेश आदि में ही, व्यावसायिक रूप में सही-सुरक्षित रखा गया है। इसमें अभिनय और नृत्य दोनों है। रस की अनुभूति के लिए पहले अभिनय द्वारा

उसका उद्रेक किया जाता है। फिर, अन्त में, विशेष भावानुकूल ताल के साथ नृत्त द्वारा उसका निर्वाह किया जाता है। इस तरह कथक नृत्य में सर्व प्रथम अभिनय और अभिनय के लिए मुद्राएँ और भंगिमाएँ अत्यावश्यक उपकरण हैं। प्रेम की अनेक स्थितियाँ इसमें अनायास आ जाती हैं। इसकी प्रभविष्णुता विपरीत रसों और चपल पद चापों से बढ़ जाती है। कथक की विशेषता है कि नर्तक वर्तुल चक्रों में नृत्य मुद्रा में कई बार घूमता है और फिर किंचित ठहर कर नया संतुलन ग्रहण करता है। कथक का राधाकृष्ण नृत्य 'राधा कृष्ण' के कथानक में नर्तक एक ही साथ प्रियतम और प्रेयसी, दोनों भूमिकाएँ अदा करता है। वह बारी बारी से प्रेम की सभी स्थितियों का प्रदर्शन करता है। अभिनय से विषय-वस्तु का संकेत मिलता है। मुद्राओं और भंगिमाओं से उसकी व्याख्या हो जाती है, हाथ सिर की सीध में ऊपर रहता है, बायां कन्धे के समानान्तर। सिर लय के साथ हिलते हैं और आँखें शृंगार रस की स्थायी दृष्टि बतलाती हैं।

'छउ' नृत्य कथक से बहुत दूर है। 'छउ' में मुखावरण का प्रयोग है। अतः, मौखिक मुद्राएं असंभव हैं। 'छउ' में अभिनय नहीं, नृत्त प्रधान है। नृत्त के बाद, नाट्य या नृत्य के तत्त्वों का प्रयोग होता है। इसमें नर्तक के मुख सौन्दर्य का विशेष उपयोग नहीं होता। क्योंकि, 'छउ' शैली शरीर की यौगिक क्रिया है, और ताल के साथ सम्पूर्ण शरीर नाचता है। मुख तो आवरण से छिपा रहता है। साथ ही, 'छउ' शैली में अंगभंगिमा ताल का अनुकरण करती है। किन्तु, कथक में अभिनय भंगिमा अलग है। पीछे ताल पर नृत्य भाव के निर्वाह के लिए होता है। फिर, 'छउ' नृत्य की परिधि बड़ी है। कथक शैली के अनुरूप, इसमें कामोत्तेजना के उद्दीपन नहीं, बल्कि विभिन्न मनस्थितियाँ मानवीय भावनाओं की बहुरूपता को यौगिक चेष्टाओं द्वारा प्रदर्शित करती हैं।

मणिपुरी नृत्य का बंगाल, आसाम, उड़ीसा में अधिक प्रचार है।

बंगाल में कवीन्द्र रवीन्द्र ने इसे बहुत सँवारा और बढ़ाया। इसकी शैली सरिता की कल-कल धारा और सुरभित पवन के मन्द झकोरों से मिलती जुलती है। 'छउ' नृत्य मणिपुरी से उस विषय की मौलिक विभिन्नता रखता है। 'छउ' नृत्य नृत्त प्रधान है। मणिपुरी में अभिनय, नृत्य और नृत्त एक ही साथ चलते हैं। फिर भी नृत्य के बाद ही नृत्त है और तब अभिनय है। साथ ही, 'छउ' नृत्य में नृत्त परुष है, मणिपुरी का नृत्त लास्यमय। 'छउ' नृत्य ओज और आवेग पूर्ण है, किंतु मणिपुरी मसृण एवं मृदुल। 'छउ' नृत्य में शौर्य एवं भावना की अनुभूति में चरम गाम्भीर्य है, मणिपुरी में पत्ते जैसी सिहरन। मणिपुरी में लड़कियों के सुन्दर प्रसाधन एवं अकृत्रिम प्रस्तुतीकरण की एक विशिष्ट प्रणाली है, और उस नृत्य-शृंगार में पात्रोचित परिधान की आवश्यकता है। मणिपुरी में मुखशृंगार प्रधान है, 'छउ' में मुखशृंगार की जगह मुखावरण होता है। 'छउ' नृत्य में एक नर्त्तक एक ही भूमिका अदा करता है, किन्तु मणिपुरी समवेत नृत्य के अधिक उपयुक्त है। मणिपुरी नृत्य में हस्त मुद्रा या मुखाभिव्यक्ति नहीं होती, केवल खोल अथवा मृदंग की ताल पर लयात्मक शारीरिक गति के द्वारा भावनाओं को मूर्त रूप दिया जाता है। मणिपुरी नृत्य में कहानी का तत्व बहुत कम रहता है; सिर्फ गतियों से भाव बोध होता है। उस नृत्य का चापल्य इस बात से और बढ़ जाता है कि नर्त्तकी की आँखें उसकी भुजाओं की सीध में मुड़ती हैं, और भुजाएँ उसके पदों की दिशा का अनुसरण करती हैं। इस तरह, सम्पूर्ण शरीर, एक ही साथ, एक विशेष भाव-स्थिति में देखी जाती है।

काव्यात्मक गीतों के साथ सर्वदा रास-भाव अथवा गोपियों के आनन्द नृत्य अथवा राधा के अभिसार का भाव उपस्थित रहता है। कृष्ण की भूमिका अदा करनेवाले एक लड़के के साथ केवल महिलाएँ इस प्रकार के नृत्य में भाग लेती हैं। इस नृत्य में वैष्णवभावना का गहरा पुट है। इसके विपरीत 'छउ' नृत्य में शैव भावना का

प्राधान्य है और इसमें तांडव पद्धति प्रमुख है। मणिपुरी नृत्य-स्वर गीत का अनुसरण करता है। 'छउ' नृत्य में वाद्य-संगीत का उपयोग भावनोचित नृत्त की मात्र समृद्धि के लिए ही होता है। 'छउ' नृत्य में सभी तरह के भाव चित्रित होते हैं और रूपक के लिए यह अधिक उपयोगी है। मणिपुरी में शान्त रस प्रधान है, छउ में वीर रस। हास्य अभिनय के निमित्त मणिपुरी नृत्य में नर्त्तकी के पैर उठते नहीं और घुटने मुड़े हुए और साथ-साथ रहते हैं। 'छउ' नृत्य में पद निक्षेप स्वतंत्र और रसानुभूति की अवस्था के अनुकूल होता है। 'छउ' में मणिपुरी नृत्य जैसी एक ही गति की बार-बार आवृत्ति भी नहीं होती, और यह अधिक नाटकीय है।

कथाकली और 'छउ' नृत्य में एक महत्वपूर्ण सादृश्य है। पहली बात तो यह है कि दोनों नृत्य प्रणालियों का उद्देश्य है कथाओं को रंगमंच पर अभिनीत करना। और दोनों में मुख-विन्यास आवश्यक है। किन्तु जहाँ 'छउ' प्रणाली में पात्रोचित मुखावरण धारण किए जाते हैं, कथाकली में मुख विन्यास अब बिना किसी आवरण के रंगों और कूंची से करना पड़ता है। इच्छित रस का प्रथम आभास मुख-विन्यास से ही मिलता है। कथाकली की शैली अत्यधिक विकसित है। अपनी शैली वैशिष्ट्य, लयात्मक गति एवं नृत्य की मुद्राओं में यह सर्वोत्कृष्ट एवं पूर्णता प्राप्त है। गति की मसृणता एवं तीव्रता भी कथाकली के मूल तत्त्व हैं। 'छउ' नृत्य का भी पाद-कौशल महत्वपूर्ण है और उसमें समुचित तीव्रता भी पाई जाती है। 'छउ' और कथाकली, दोनों में हाथ-पैर की मुद्राओं का प्रयोग है।

'छउ' नृत्य की तरह कथाकली में नृत्त, नृत्य एवं नाट्य इन तीनों ही का सामंजस्य है। फिर भी 'छउ' नृत्य में इतना अन्तर अवश्य है कि नृत्त ही इसका प्राण है। किन्तु कथाकली में शायद वैसी बात नहीं। कथाकली में मुख्यतः मुद्रा अथवा हस्तविन्यास के सहारे कथा प्रस्तुत की जाती है। 'छउ' नृत्य में मौखिक मुद्राएँ तो वर्जित ही हैं,

केवल हस्त-विन्यास का कुछ स्थान है। जहाँ तक नाट्य का उपयोग है। 'छउ' नृत्य में इसका स्थान नृत्त के बाद है। यही कारण है कि कथाकली में भावनाएं कुछ अतिरंजित मालूम पड़ती हैं। कथाकली लाक्षणिक है, और 'छउ' संकेतात्मक।

इस तरह 'छउ' शैली कथाकली-सी जटिल नहीं। जहाँ कथाकली में अभिनय, नृत्य और नृत्त तीनों का सामंजस्य है, 'छउ' में तीनों के प्रयोग की अपनी सीमाएँ हैं। 'छउ' नृत्तप्रधान शैली है और उसकी तुलना में नाट्य और नृत्य क्रमशः पीछे हैं।

किन्तु, 'कथाकली' और 'छउ' शैलियों में एक यह भी सादृश्य है कि दोनों में स्त्री नर्त्तक वर्जित है, क्योंकि इसमें पुरुषोचित श्रम की अपेक्षा है। किन्तु, दोनों नृत्य रूपक की दृष्टि से एक दूसरे के अधिक समीप हैं।

फिर छउ और कथाकलि दोनों में कथा के छन्द विविध तालों में पहले से बँधे रहते हैं और उसी ताल की मात्राओं के अनुसार मर्दल पहले से बजता रहता है। कथाकलि में अभिनेता पैरों में घुंघरू बाँधे हुए उसी ताल से थिरकता हुआ रंग मंच पर पहुँचता है। रस के अनुसार, स्थाई भाव की मुद्रा प्रधान रहेगी। फिर कथा-प्रसंग के अनुसार रस, भाव विभाव, अनुभाव आदि बदलते हैं तथा नाट्य, नृत्य और नृत्त तीनों के द्वारा अभिनय होता है। 'छउ' में अन्तर इतना है कि यह नृत्त प्रधान है, और नृत्य के लिए कम अवसर है। साथ ही, कथा-कलि में संगीत, पर्दे के पीछे से गीतों या पदों का गायन उत्तर-प्रत्युत्तर के रूप करते हैं। 'छउ' नृत्य में गीतों के लिए स्थान नहीं और केवल नृत्त से ही भाव और अर्थ को स्पष्ट करना होता है।

भरत नाट्यम :—यह भाव प्रधान नृत्य शैली भरत के नाट्य शास्त्र से बहुत निकट है। देवदासियों द्वारा अभिनीत होकर यह सुरक्षित रहा। देवदासियाँ मन्दिर की लड़कियाँ थीं, जिन्होंने अपना जीवन देवताओं की आराधना में उत्सर्ग कर दिया था।

भारत नाट्यम की अपनी एक परम्परागत पृष्ठभूमि है जिसकी उत्कृष्ट और विशिष्ट कला में कठिन बन्धन और रीतियाँ हैं। भारत भाव, राग और ताल का बोधक है और इन तीन प्राथमिक भावनाओं को बड़ी कलात्मकता से मूर्त रूप प्रदान करता है। कोमलता और आकर्षण के साथ-ही-साथ इसमें एक शक्ति सहज ही अनुभवगम्य और दर्शनीय है। भारत नाट्यम में गले से स्वर संगीत, हस्तमुद्राओं से वे वस्तुएँ बतलायी जाती हैं जो कथानक के शब्दों को अर्थ देते हैं, आँखों से भाव और पैरों से ताल अभिव्यक्त होते हैं। संगीत, नृत्य और मुद्राएँ सभी अवरुद्ध वृत्तों में नियमबद्ध हैं।

भारत नाट्यम का अभिनय 'अलारिपु' से होता है। इसमें फूलों से सजाने जैसी क्रिया होती है; यह विशुद्ध नृत्त है। इसमें सिर, हाथ और पैर की गति में पूर्ण सामंजस्य कायम रखते हुए दुगुने और तिगुने लय के साथ अर्चना होती है। फिर 'जाति स्वर' की विधि है, जिसमें लय की मात्राएँ विशेष राग और नृत्यगतियों में रची जाती हैं। फिर शब्द होता है, जिसमें दर्शक मंडली के सामने 'नृत्त' रखा जाता है। इसके पहले केवल 'नृत्य' रहता है। केवल तीसरी प्रतिक्रया में कुछ नृत्य के बाद नृत्य द्वारा अभिनय किया जाता है। इस तरह कथाकलि की तरह इसमें नाटकीयता का दायरा भी विशाल है किन्तु, भंगिमायें में संयम के साथ ही मुखरता एवं शिष्टता है। चौथी विधि है, वर्ण या 'स्वरजति'। यह एक संश्लिष्ट रचना है, जिसमें नृत्य और नृत्त, दोनों पर्याप्त हैं। फिर नृत्य का सौम्य प्रदर्शन होता है। इसके साथ स्थाई लय में पद विभिन्न रागों में गाये जाते हैं जिसमें प्रियतम के वियोग की कहानी रहती है। पदों के गान के बाद 'तिलाना' होता है। पदों के साथ भावाभिनय होता है, तो तिलाने के साथ शुद्ध नृत्त। तिलाना एक लयपूर्ण रचना है। अन्त में श्लोक होते हैं, जो अभिनय का अंग है। भारत नाट्यम में अभिनय का प्रमुख स्थान है, क्योंकि इसे पदों के अर्थ के स्पष्टीकरण में सहायता मिलती है।

इस तरह भरतनाट्यम् में भी नाट्य, नृत्य और नृत्त तीनों हैं, किन्तु चौबीस मुद्राओं में यह कथाकलि से बिलकुल भिन्न है। 'छउ' नृत्य से विभिन्नता यहाँ भी स्पष्ट है। छउ नृत्य में नृत्त ही प्रधान है, उसके बाद अभिनय। नृत्य तो नाम मात्र का है। फिर 'छउ' नृत्य में रूपक को कई नर्तक मिलकर उपस्थित करते हैं, किन्तु भरत नाट्यम् में एक ही नर्तक रहता है। इसलिए, छउ नृत्य में स्थूल नाटकीयता अधिक है। भारतनाट्यम् में रस-बोध ही होता है, किन्तु 'छउ' में स्थिति बोध भी है, जिसके चलते नाटकीयता अधिक स्पष्ट हो जाती है। इसके साथ ही, जहाँ छउ नृत्य, नृत्त पर ही विशेष जोर देता है, भरतनाट्यम् नृत्य के तीनों अवयवों पर समान जोर देता है। भरतनाट्यम् में अभिनय का प्रमुख स्थान है क्योंकि इससे पदों के अंश के स्पष्टीकरण में सहायता मिलती है। छउ में पद नहीं गाये जाते। 'नृत्त' से ही भाव बोध कराया जाता है और अभिनय उसके स्पष्टीकरण में सहायक होता है।

ताल और संगीत के विषय में भी 'छउ' नृत्य की अपनी विशिष्टता है। सभी नृत्यों के विकास में कई अवस्थाएँ हैं। उनका आरम्भ भेद है। ताल भी नृत्य की गति के अनुकूल है। विकास की दूसरी अवस्था में गति तीव्र हो जाती है, तो ताल भी बदल जाता है। तब "कत" या तेहाई नचाये हैं। दूसरी नृत्य पद्धतियों में ऐसा नहीं होता। फिर तीसरी अवस्था में ताल बदलता है। यह गति बहुत तीव्र होती है। उसी प्रकार प्रत्येक ताल के साथ ही सुर भी बदलता है। यह नृत्य में 'रंग' का काम करता है। छउ नृत्य के ताल भारतीय ही हैं; किन्तु उनका स्वरूप इतना परिवर्तित हो गया है कि पहचानना कठिन है। जिस ताल को लोग तबला पर बजाते हैं, उसे यहाँ ढोल और नगाड़े पर बजाना पड़ता है। चूँकि, छउ नृत्य खुले मैदान में होता है, ढोल की जगह नगाड़े से ही समुचित नाद पैदा हो सकता है। धमार ताल में सात मात्राएँ और छन्द त्रिमात्रिक हैं—क् . . धेता . . धेता . . धा, गदेना, धेता . . ता। किन्तु छउ नृत्य में यह परिवर्तित हो जाता है . . धा धे धा

धेता ता खिति खिति ता। यद्यपि इसमें भी वही सात मात्राएँ और त्रिमात्रिक छन्द है। ऐसा किसी और पद्धति में नहीं होता। साथ ही, विशेष नृत्यों के लिए विशेष ताल हैं, क्योंकि एक विशेष नृत्य के स्थाई भाव के अनुकूल ही ताल योजना भी होती है। अतएव, प्रत्येक रूपक के लिए एक विशेष ताल योजना भी अपेक्षित हुआ करती है। इस कला की इस सूक्ष्म विवेचना से छउ नृत्य की प्रत्येक योजना एक विशेष रस का संचार करती है और साथ ही एक विशेष अर्थ की अभिव्यंजना, जो ताल या सुरों के मिश्रण से स्पष्ट नहीं होता।

इस तरह हम देखते हैं कि छउ नृत्य के मौलिक तत्त्व अन्य शैलियों में भी पाये जाते हैं। 'छउ नृत्य, और स्वरविधान एवं नृत्य पद्धति में 'कथाकलि, से कुछ सादृश्य रखता है। साथ ही, भरतनाट्यम् से इसने मुद्राएँ ली हैं। किन्तु इन सबों के बावजूद 'छउ' का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है और यह उतना ही ठोस है जितना औरों का। वस्तुतः, छउ नृत्य की विशिष्टता मुखावरणों के उपयोग में है जिसके फलस्वरूप एक ऐसी नृत्य-पद्धति निरूपित होती है, जो और नृत्य प्रणालियों से बिलकुल अलग है। व्यक्तिकता तो इसमें सर्वोपरि है। यद्यपि अभी 'छउ' नृत्य में लड़कियाँ या स्त्रियाँ अभिनय नहीं करतीं, किन्तु धीरे-धीरे इसकी प्रवृत्तियाँ जब और संतुलित और परिमार्जित हो जायँगी, तो बालाएँ भी इसे अपनायेंगी। १९३८ ई० के यूरोपीय भ्रमण में भी एक लड़की सम्मिलित हुई थी। मुखावरण तो वस्तुतः स्त्रियों के लिए अच्छा अवसर प्रदान करता है; क्योंकि वे इसके उपयोग से अपने स्त्रीरूप को छिपाए रखकर नृत्य प्रदर्शन कर सकती हैं। भारत में नाट्य की अवनति का कारण था नृत्य-कला का पतन हो जाना, फलस्वरूप यह वारांगनाओं और बालकों द्वारा रईस वर्ग के दरबारों में तफरीह और जशन की वस्तु बन गई थी। नृत्य वारांगनाओं का कार्य समझा जाने लगा। अभी भी नृत्य आयोजनों में दर्शक नर्तकियों में विशेष आकर्षण दिखलाते हैं, जिससे स्पष्ट है वे विशुद्ध नृत्यकला के

महत्व को नहीं समझते। मुखावरण एक ऐसा अस्त्र है, जिसके उपयोग से भारत का नारी-वर्ग एक विशुद्ध कलाकार के रूप में रंगमंच पर आकर नृत्य का चमत्कार दिखला सकता है। 'छऊ' नृत्य में जो शारीरिक कसरत है उससे स्त्रियों को भी उतना लाभ है, जितना पुरुषों को। शारीरिक सौष्ठव ही सौंदर्य का दर्पण है और यह पुरुष और नारी दोनों को प्रिय है। छऊ नृत्य शारीरिक सौष्ठव के साथ ही, विशुद्ध नृत्य के आनन्द की उपलब्धि कराता है। वह दिन दूर नहीं, जब 'छऊ' या मुखावरण का प्रयोग, भारतीय नृत्य-पद्धति में खुलकर होने लगेगा। यदि ऐसा हुआ तो भारतीय नृत्य-कला को बहुत कुछ बल मिलेगा। 'छऊ' नृत्य की संभावनाएँ महान हैं।

विदेशियों की दृष्टि में छउ नृत्य

सरायकेला का 'छउ' नृत्य अपने साज-शृङ्गार, कला-भंगिमाओं, तथा भाव-कथाओं से दर्शकों पर अपना गहरा प्रभाव डाल देता है। यह प्रभावात्मिकता देश के साथ ही विदेशों में भी पाई गयी। नृत्य की कलात्मक पद्धतियों की विशिष्टताओं की परख का मापदंड उसकी मनमोहकता है, ऐसा नाट्य और संगीत-कला के पंडितों का मत है। नृत्य शरीर की गतिलयात्मकता को कहते हैं और नृत्य की परख व्याकरण के मानसिक उद्यमों से न कर उसकी व्यापक सार्वजनिक मनमोहकता से ही की जा सकी है। गेंद के खेल में जैसे अक्सर खिलाड़ी के साथ दर्शकों के पदचाप भी स्वभावतः चलने लगते हैं, वैसे ही नर्त्तक की मुद्राओं के साथ दर्शक की सहानुभूति यदि सहज ही प्राप्त न हो सकी; और नर्तक की गति में यदि दर्शक की मति लीन न हो सकी, तो वह नृत्य असफल ही कहा जायगा। ऐसी स्थिति में नृत्य में एक मूक किन्तु सहज अभिव्यंजनात्मकता भी वर्तमान रहती है और दर्शक नृत्यजनित उल्लास में विभोर होकर कथासार को सहज ही, अङ्ग-विन्यास, भाव-प्रदर्शन और संगीत के सामंजस्य से आत्मसात कर लेता है। मानव की भावनाएँ और उनके प्रकाशन के रूप भी सभी जगह एक ही हैं, अतएव, किसी विशिष्ट नृत्य-पद्धति की मनमोहकता देश काल की सीमा से परे है।

नृत्य की सुन्दरता के कौन आवश्यक तत्त्व हैं; 'छउ' नृत्य में ये कहाँ तक पाये जाते हैं; दुनिया के उन्नत देशों के कला-प्रेमियों या दर्शकों की इस पर क्या सम्मतियां हैं, आदि विषयों पर अभी हम विचार करेंगे। नृत्य के आकर्षण की पहली आवश्यकता है आन्दोलनों की बार-बार पुनरावृत्ति का अभाव। एक ही प्रतिक्रिया की आवृत्ति से आकर्षण

कम होता हो। किसी भी कलाकृति के प्रत्येक अवयव की एक विशिष्ट उपयोगिता है। अतएव, उसकी उत्कृष्टता या सौन्दर्य उसकी एकांगिता में है। साथ ही, कहीं व्यतिक्रम या व्यभिचार भी न रहे। व्यभिचार का समावेश तब होता है, जब किसी चित्र में एक व्यापक रस के चित्रण की उपेक्षा कर कुछ भड़काऊ या उत्तेजनशील स्थलों पर जोर दिया जाय। इससे चित्र में विकृति आ जाती है और उद्देश्य के विपरीत प्राप्ति होती है। प्रेम का आविर्भाव तारुण्य में ही होता है; साथ ही, यह भी कहा जा सकता है कि तारुण्य की मधुरिमा अनायास प्रेम की मंजरियां उत्पन्न करती हैं। किन्तु यदि इस प्रेम-चित्रण में चलचित्र की नायिकाओं के अङ्गों के उभार भर ही कलाकार की कूची संलग्न रही, तो वह प्रेम का चित्र नहीं, वासना का व्यभिचार है।

नृत्य वह व्यापक कला है, जिसके अन्तर्गत अन्य सहायक कलाएँ भी हैं। नृत्य में यदि मूर्तिकार की मूर्ति के अङ्ग-विन्यास और भाव है, तो साथ ही चित्रकार की तन्मयता तथा विशेष भंगिमाएँ भी मुद्राओं द्वारा पाई जाती हैं। अभिनय और संगीत तो अभिन्न हैं ही। अभिनय से रूप-शृङ्गार, आभरण-कला आदि भी संबद्ध हैं और संगीत में तो राग, ताल और लय हैं ही। नृत्य व्यक्ति की सभी व्यंजनात्मक प्रवृत्तियों का एक्य है। साथ ही, किसी भी नृत्य की परख में सात्विक, आंगिक, वाचिक तथा आहार्य का भी संयोग है। सारंगदेव के 'संगीत रत्नाकर' के अनुसार नर्त्तक का शरीर उस संसार के समान है, जिसमें कान वायुमंडल है; प्रत्यंग उपांग तारागण हैं और मुख, चन्द्रमा के सदृश शीतलता और शुभ्रता धारण किये है। "अभिनय दर्पण" में नन्दकिशोर ने दूसरे शब्दों में कहा कि नर्त्तकी का नृत्य, गीत, अभिनय और भाव तालमय होना चाहिए। —वह गीत के मर्म को हस्तमुद्राओं से व्यक्त कर और भाव को नेत्रों से प्रगट करे तथा पांव से ताल दे, साथ ही हस्त का अनुगमन नेत्र करें और नेत्रों का मन; क्योंकि मन की एकाग्रता से भाव उत्पन्न होता है और भावोत्पत्ति से ही रस-चर्पण।

'छउ' नृत्य में उपरोक्त तत्व प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। इस प्रसंग में विदेशों में 'छउ' नृत्य पर जो टिप्पणियाँ प्रकाशित हुई हैं, उनसे हमें बहुत कुछ सहायता मिलेगी। 'छउ' नृत्य के वर्त्तमान रूप के प्रेणता, स्वर्गीय कुमार विजय प्रताप सिंह देव के नेतृत्व में सन् १९३८ ई० में सरायकेला 'छउ' नृत्य का एक दल यूरोप और ब्रिटिश द्वीप समूह में गया और प्रदर्शन किए। इटली के 'एल-पकीलो' ने २५ मार्च, १९३८ ई० के अन्त में लिखा कि इटली के मध्य और सुदूर-पूर्वीय विद्यापीठ के निमंत्रण पर आये हुए सरायकेला के 'छउ' नर्त्तकों ने हिन्दू पुरातत्व के मान्य विषयों को खूबी के साथ दिखलाया है और इनमें व्यावसायिकता या नयापन की झलक नहीं थी। साथ ही, इस नज़ारे में परम्परागत सौन्दर्य, लयात्मक पूर्णता और आहार्य-चमत्कार भी थे। उसी प्रदर्शन के सम्बन्ध में एक दूसरे अखबार 'एलपवलो डी रोना' ने २५ मार्च, ३८ ई० के अंक में लिखा था कि "यह नृत्य अपने अपूर्व आकर्षण से एक ऐसी दर्शक मंडली को स्पष्टतः प्रभावित कर सकी, जो साधारणतः शीघ्र आकृष्ट नहीं होती।"

वस्तुतः, इन भावविह्वल नर्त्तकों की भाव-मुद्राओं की शौर्य-कला और मार्जारीय सामंजस्य का एक अपूर्व जादू है और इसका कारण है इस नृत्य का प्राचीण संगीत, जो मुद्राओं और भंगिमाओं में निखार ला कर उन्हें सजग बना देता है। इस नृत्य का आहार्य चमत्कार तो वर्णनातीत है। नृत्य तो जैसे सौन्दर्य और लुभावनेपन के सपने लगते हैं। उसी प्रदर्शन के सम्बन्ध में 'एल गयरनेल इटालिया' पत्र ने २६ मार्च, १९३७ ई० में लिखा"''ये नृत्य, जिनका सम्पादन श्लाघनीय कालैक्य और विस्मयकारी चपलता से पूर्णता के साथ हुआ, भावपूर्ण हैं। शरीर अवयवों तथा अंगुलियों की मुद्राएँ सब कुछ कह देती हैं और भावनाओं और स्थितियों से उनका पूर्ण मेल खाता है। कार्यानुकूल संगीत के साथ ये भावात्मक प्रदर्शन सदैव एक (Cadence) के साथ लय का निर्वाह करते हैं। दर्शक मंडली ने इस प्रदर्शन के प्रत्येक विषय को

को पसन्द किया ही, सम्पूर्ण कला के लिए अन्त में अपनी दिलचस्पी दिखलायी।''

इसी तरह 'एल लमरो फासिस्टर' ने २६ मार्च, १९३८ ई० के संस्करण में लिखा····''हमने एक ऐसी कला देखी जिसका उद्देश्य महान राष्ट्रीय कार्यों के अनमोल मुहूर्तों तथा ऋतु पर्वों का प्रदर्शन करना है। रंग-बिरंगे परिधानों के ऐश्वर्य के साथ मृदुल तथा सूक्ष्म भंगिमाएँ एवं पद भी उतने ही अभिव्यंजनात्मक हैं, जितने हाथ। पुरुषोचित ओज, लचीलापन, ऐश्वर्यपूर्ण शरीर सौष्ठव, विषयों की स्पष्टता एवं गांभीर्य—ये सब संध्यापर्व, मछुआ, सूर्य के दुखान्त प्रेम का नृत्य और ओजपूर्ण द्वन्द्व नृत्य में विद्यमान है।''

इस पत्र ने साथ ही यह भी लिखा कि ''भारतीय नृत्य में संस्कृति और स्वास्थ्य के तत्व प्रचुर मात्रा में हैं; एक ऐसी गहरी भावना है जो आध्यात्म की असंगत और ओछी बकवासियों में खो नहीं जाती, साथ ही इसकी भाषा संयमपूर्ण, सभी सस्ते वाह्याडम्बरों से परे, सर्वयुगीन, बौद्धिक एवं काव्यात्मक है। दुनिया की वास्तविकता से चिपका रहनेवाला जीवन का सत्य यहां मुखर हो उठता है।''

'ला ट्रिब्यूनल' ने भी २६ मार्च, ३८ ई० के अंक में लिखाः—''आन्दोलनों की परख और सूझ-बूझ, मुद्राओं की स्वाभाविकता सहज और साथ ही प्रभावात्मक क्रिया-कलापों के सतत् सान्निध्य में लयात्मक अनेकता, इन सबों के कारण यह नृत्य अपूर्व और अद्भुत जैसा है।''

इन नृत्यों के प्रदर्शन इंगलैंड में भी हुए। 'डेली वर्कर' पत्र ने १२ जून, ३८ ई० के अंक में लिखा ''मुखपोस पहने हुए, ये नृत्य शुद्ध आन्दोलनों और रचनाओं के आकर्षक प्रदर्शन हैं और ये मूलतः शास्त्रीय हैं। 'स्केच' पत्र ने १५ जून, १९३८ ई० के अंक में लिखा····''इनका संगीत अतीव आकर्षक है, और इनके परिधान का रक्तिम और सुनहला रंग तो और अत्यन्त मनोहर था। इस मंडली के पद-चाप तो अत्यन्त सुन्दर दर्शनीय हैं; क्योंकि वे इतने चपल हैं जितनी यूरोप में अंगुलियाँ होती हैं।''

'द आबज़र्वर' ने १२ जून, ३८ ई० के अंक में लिखा :....."पैरों की पायल संगीत के आरोह को तीव्र कर देती हैं और यही पदचापों के आधार हैं। सुन्दर मुखावरण एकटक ताकते हुए देवताओं की याद दिलाते हैं; वे सभी लोक-संगीत और नृत्य ऐसे उत्तेजन बन जाते हैं जो इस नृत्य में व्यक्ति से नहीं, पूरे समुदाय से ही तादात्म्य कराते हैं।"

'स्टेज' पत्र ने ९ जून, १९३८ ई० के अंक में लिखा :....."आंखों को मुखावरों का सौन्दर्य तो भाता ही है, परिधान का ऐश्वर्य भी वैसा ही है और नृत्य के अनेक आन्दोलन भी वस्तुतः बहुत मनोहर हैं।"

'बरमिंघम पोस्ट' ने ९ जून, ३८ई० के अंक में लिखा ....."इस (नृत्य) में अद्भुत विराम और लय का अपूर्व आकर्षण है।"

बुद्धवार के न्यूज क्रोनिकल ने ८ जून, सन् १९३८ ई० के अंक में लिखा कि इस नृत्य को मौका मिलने पर सबों को देखना चाहिए; क्योंकि हिन्दू रंगों और आन्दोलनों का इसमें आवेगपूर्ण प्रदर्शन है। इसमें एक प्रवाह और सहजता है जो प्राचीन परम्परा की ऐसी वस्तु है जिसे पहले बाहर कभी नहीं दिखाया गया। उदयशंकर के नृत्य जैसा इसमें पांडित्य तो नहीं, क्योंकि ये दक्षिण भारतीय नृत्य-शैली के दुरूह प्रतीकों का व्यवहार नहीं करते और उन्हीं भारतीय नृत्य की मुद्राओं पर जोर देते हैं, जो सर्व बोधगम्य हैं और स्वभावतः वे आवेग के अपूर्व ऐश्वर्य का बोध दिलाते हैं। उसी तरह 'स्टार' ने ८ जून, १९३८ ई० के संस्करण में लिखा कि मुखावरणों की सौम्य अप्रतिरोधिता सहज ही शरीर और पदों के लयात्मक आन्दोलनों की मुद्राओं की अभिव्यंजनात्मकता की ओर आकृष्ट कर लेती है।"

८ जून, १९३८ ई० में "डेली टेलिग्राफ ऐण्ड मौर्निंग पोस्ट" ने लिखा कि "मुखावरण, जो सुन्दर और आकर्षक हैं, बड़े ही लुभावने हैं; उनसे देवियों एवं नारी-चरित्रों के अच्छे चित्र मिलते हैं।"

"टाइम्स" ने ८ जून, १९३८ ई० के अंक में लिखा....'मुखावरण बड़े ही सुन्दर हैं और पैर-हाथों के आन्दोलनों से बहुत अच्छा भाव-

अभिव्यंजन होता है। उत्कृष्ट नृत्यों का अर्थ भी स्पष्ट है। साथ ही, नृत्य की गतियों और परिधानों में पर्याप्त सौन्दर्य है।

'छउ' नृत्य के कुछ रूपकों की चर्चा करते हुए १७ मार्च, १९३८ ई० के अंक में 'स्टेट्समैन' ने लिखा :''''"मधुकैटभ रूपक में राक्षस मधुकैटभ और परी तिलोत्तमा के बीच का दृश्य आनन्द की पराकाष्ठा है, वैसे ही मयूर-नृत्य, रंग-चित्रण की गौरवपूर्ण छटा है जो अन्य भारतीय नृत्य-पद्धतियों से बिलकुल अलग है। रूपक-योजना करनेवालों के लिए इसमें प्रचुर सामग्री है। इसके नृत्य के शब्दकोश में वृद्धि होगी। जहाँ तक पद-निक्षेप का प्रश्न है, यह भरत नाट्यम, कथाकलि, मणिपुरी, कत्थक सबों से उत्कृष्ट है।

गतियों की चर्चा करते हुए 'स्पेक्टेटर' ने १७ जून, १९३८ ई० के संस्करण में लिखा कि "सरायकेला के नर्त्तकों के पास कलात्मक ढंग से गति-प्रदर्शन की अपनी विशेष शैली है।

'टाइम्स एण्ड टाइड' ने १८ जून, १९३८ ई० के अङ्क में लिखा "....मुख्य बात यह है कि अपनी मौलिकता एवं नवीनता से परे 'छउ' नृत्य काव्य-सा लगता है। 'छउ' नृत्य का आविष्कार दूरदर्शी रंगसाज था, जिसने 'परम्परा नृत्य' का सारांश ही रख दिया है। सरायकेला के लोग का पूर्ण अस्तित्व नाट्यमय है। पात्र अपनी गतियों और आन्दोलनों के सहारे, अपने देवताओं की कहानियाँ ही नहीं कहते, अपितु अपने दैनिक जीवन के क्रिया-कलाप भी दिखला देने में समर्थ हैं।

H
793.31954-CS
VER-K4
17076

भारत में छऊ नृत्य की प्रभविष्णुता

छऊ नृत्य के सम्बन्ध में भारतीय पत्रों की सम्मतियाँ भी इसकी प्रभावोत्पादकता पर प्रकाश डालने में सहायक है। सन् १९३७ ई० में रविवासरीय 'अमृत बाजार पत्रिका' ने २ मई, १९३७ तथा 'फॉरवर्ड' ने १० मई, १९३७ ई० के संस्करण में लिखा कि "सरायकेला के नृत्य में बहुरूपता थी। इसमें वीरोचित, ओजपूर्ण आन्दोलनों के साथ ही मसृण सपीली और जादूभरी भंगिमाएँ भी थीं। दुर्योधन, परशुराम और गदायुद्ध जैसे नृत्य-रूपकों की योजना के सम्बन्ध में लिखा कि इन रूपकों में प्रचुर तेज एवं पौरुष था। साथ ही, उनमें लाक्षणिक सौन्दर्य भी था। लास्य और पौरुष के पूर्ण सामंजस्य से ये रूपक आश्चर्यजनक हो गए हैं। लगता है, जैसे कला यहाँ के लोक-जीवन की शिराओं में प्रवाहित होती है। कथाकली नृत्य-पद्धति के विपरीत छऊ-नर्तकों ने भारतीय पौराणिक कहानियों से कुछ ही विषय चुने हैं और भरत मुनि के सिद्धान्तों के आधार पर, इन्होंने अपनी एक लुभावनी मुद्रा-शैली भी आविष्कृत कर ली है। इस नृत्य-शैली में छऊ अथवा मुखावरण चरित्र के अनुकूल होते हैं। कथाकली की तुलना में इसकी अपनी विशेषता या विभिन्नता है। मुखावरण का प्रयोग तो नर्त्तक के व्यैक्तिक रूप को छिपाने मात्र के लिए होता है। इसी तरह एक तत्कालीन पत्र 'सिडलैस', शिमला वीकली ने ५ जून, १९३७ ई० के संस्करण में लिखा कि यद्यपि मुखावरण मुख-मुद्राओं को छिपा देते हैं, फिर भी संकेतात्मक आन्दोलन और लयपूर्ण कदम मानव हृदय की सभी भावनाओं को स्पष्ट कर देते हैं। 'हिन्दुस्तान टाइम्स' ने २३ मई, १९३७ ई० के प्रकाशन में लिखा कि 'छऊ' नृत्य दो-तीन दृष्टियों से अपूर्व एवं अनोखा है।

'कथाकली' की तरह यह सभी पौराणिक रूपकों को प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि उनमें से कुछ विषय चुन लिए गए हैं। दूसरी बात कि मुख पर आवरण हैं और यही इसकी विशेषता है। फिर भरत नाट्यम के आधार पर इनकी अपनी एक मुद्रा-शैली है। 'स्टेट्समैन' पत्र ने २४ मई, १६३७ ई० के संस्करण में लिखा..."रंग, आन्दोलनों की अभिव्यंजना शक्ति और आवेग संयोजनाएँ, ये भारतीय नृत्य की विशेषताएँ हैं और छउ नृत्य में पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। मुखावरणों के उपयोग से नर्त्तक अपने को खूंखार योद्धाओं, भयंकर पिशाचों या जादूभरी नजरों वाली लजवन्ती नायिकाओं में बदल दे सकते हैं। और इस तरह अपेक्षित वाता-वरण में अनायास संयोजना कर देते हैं। विद्युत् के फुहारों से किसी में चकाचौंध आ सकती है, किन्तु किसी आकर्षक प्रेम-व्यापार अथवा पागल पैचाशिक नृत्य में गांभीर्य उत्पन्न नहीं किया जा सकता। ये गांभीर्य मुखावरणों की उपयोगिता पर आश्रित है। आयोजित नृत्य-रूपकों की चर्चा करते हुए पत्र ने लिखा कि "दर्जनों रूपकों में अनेक की भाव-सूक्ष्मता एवं योजना-सामंजस्य सराहनीय थे। कुशल और सुन्दर आन्दोलनों की योजना से एक रंगीन नृत्य-वैभव का आभास मिल रहा था। नर्त्तकों ने ऐसी भावभंगिमाएँ हाथ, पैर एवं शरीर से दिखलाईं। जो साधारणतः मुख से ही संभव होता है। 'आनन्द बाजार पत्रिका' के २ अक्तूबर, १६३७ ई० के पूजा-विशेषांक में श्री यतीन्द्र नाथ बोस, एम० ए० ने लिखा—भरत, सारंग देव, नन्दीकेश्वर तथा गन्यमान्य नृत्य पंडितों के सूत्रों पर आधारित होने पर भी, सरायकेला के छउ नृत्य की अपनी विशेषता है....... लोक नृत्यात्मकता ही संजीवनी शक्ति है; क्योंकि यह पुरातन, प्राचीन एवं प्रागैतिहासिक है। आदिवासी संस्कृति की शिराओं से यह धारा विस्तृत होकर प्रकृति के सतरंगी लयों एवं सुरों में मिल गई है। छउ अर्थात् छाया नृत्य, शिव की प्रतिष्ठा में चैत्र मास में सम्पादित होता है। वसंत के विजय आगमन में उत्तुंग वृक्ष अपनी हरी पताकाओं को फैला देते हैं; कलियाँ मधुमक्खियों और विहगों के प्रेम-संगीत के उत्तर

में स्पंदनशील हृदय को आहिस्ते खोल देती हैं, बादल तूफानी गति से नीले आसमान पर छा जाते हैं और शान्त सुरभि हवा, प्रकृति और पुरुष के अधरों के लिए आनन्दमय यौवन के प्याले पर प्याले लहराने लगती है। सरायकेला का दिल भी बसन्त के अनुकूल भर आता है और रंग एवं लय के प्राकृतिक आनन्दोत्सव में डूब जाता है। नृत्योत्सव जाति, धर्म और वर्ग से ऊपर ही उठता है। बड़े और छोटे, राजकुमार और कृषक, राजा और रंक, सभी अदृश्य के चरणों पर आनन्द की आरती सजाते हैं। 'छउ' नृत्य पर टिप्पणी करते हुए पत्र ने लिखा कि इस नृत्य की विशेषता इसकी अपनी सरलता एवं सहजता में है। स्पष्ट मुद्रा-शैली, संयत एवं ओजपूर्ण आन्दोलन, चित्रमय भंगिमाएँ—इनमें कहीं भी दुरूहता अथवा अस्पष्टता नहीं है, बल्कि मुद्राओं के संश्लिष्ट आध्यात्म के बदले में सहज स्थूलता के साथ ही एक पारदर्शी मुद्राभाषा दृष्टिगोचर होती है। इस तरह इसमें एक सार्वजनिक रस है। यह एक ऐसे सशक्त एवं पर्याप्त वातावरण की योजना करता है, जहाँ नर और नारी भौगोलिक या जातिगत सीमाओं से ऊपर उठ कर एक हो जाते हैं। साथ ही, अभिव्यंजना के साधन भी मात्र मानवीय हैं, जो प्राकृतिक अथवा कृत्रिम बन्धनों का अतिक्रमण कर आत्मा को अतिसूक्ष्म रसानुभूति के द्वारा भावनाओं को उच्चतर सतह तक ले जाते हैं। आत्मा का निष्कलुष स्वास्थ्य अर्थात् विश्व चेतना, भावनाओं की दुनिया के प्रवाह की लीला से ही उत्पन्न होती है। सिद्धान्ततः भी यह नृत्य अर्वाचीन एवं आधुनिक है और इसमें विकार अदृश्य है। इसमें सार्वजनीनता का अमर तत्व ही आधुनिकता की प्राणवायु है। कला-प्रेम के उच्च-स्तर पर सनातन अथवा अर्वाचीन या शास्त्रीय अथवा रोमांटिक या प्रयोगवादी जैसी कोई सीमा रेखा नहीं होती। वहां तो वाल्मीकि-टैगोर को हृदय लगाते हैं, पाश्चात्य नर्त्तकी छउ नृत्यकार से खेलती है। यह छउ नृत्य उन सभी रागात्मक अनुभूतियों एवं भाव-प्रसंगों को जागृत कर देता है, जिनका उल्लेख भारतीय-रस-सिद्धान्त में है। आनन्ददायिनी, प्रादर्शनिक,

भयानक, दुखान्त, शान्त आदि—सभी रस विभिन्न रूप-रंगों में एक दूसरे के बाद क्रम को इस तरह निभाते हैं, जैसे हरे और विशाल सागर में तालमय तरंगें एक-दूसरे के बाद उठती हों।

छउ नृत्य को एक सांस्कृतिक संगम की संज्ञा देते हुए इसी पत्र ने लिखा कि इस नृत्य-शैली में शास्त्रीय एवं मौलिक तत्वों का सामंजस्य भी है। किसी रचना का बीज है उसके रचनात्मक भाव। नियम और सूत्र व्यैक्तिक रुचि पर नहीं होते और इस बात की पुष्टि भी 'छउ' नृत्य में शैली की विभिन्नता एवं मुद्राओं के संस्करण में मिलती है। इसमें गति, रंग, छाया एवं आभूषणात्मक विकास भी है। जब यह धूप-छाँह की योजना करता है तो ऐसा रंग प्रस्तुत होता है जैसे किसी घनीभूत अभिव्यंजना में बिजली की एक किरण हो। रचना की मौलिक एवं विशिष्टता से इसकी मुद्राएँ एवं लकीरें अलग नहीं जातीं। तनाव का क्रमिक विकास विभिन्न आन्दोलनों को एक अपूर्व एकता प्रदान करता है। ओजपूर्ण पुरुष-शैली की योजना जैसे मुहरों से होती है, जिनसे तीखी गतियाँ स्पष्ट हो जाती हैं। साथ ही, आवेगात्मक स्त्रियोचित लास्य के प्रदर्शन की विशेषता अपूर्व कमनीयता से प्रकट होती है। शास्त्रीय नृत्य-शैलियों की तरह इसमें एक या एक से अधिक मुद्राओं का संयुक्त प्रदर्शन 'अंगहार' भी पाया जाता है। साथ ही, अवयवों का उचित दिशाओं में आन्दोलन भी। पदचाप, हस्त या स्कन्ध के आन्दोलन, रेचक तथा नृत्य विशेषों में विशेष रूप-योजना 'पिंडिबंध' भी पाये जाते हैं। 'छउ' नृत्य में नृत्त की अपेक्षा नृत्य ही अधिक है; क्योंकि इसमें ताल और लय का अंधानुकरण या दिमागी गुलामी नहीं, बल्कि विभिन्न भावस्थितियों की उत्कृष्ट अभिव्यंजना-मात्र है। नृत्त के उद्देश्य हैं दर्शक के मन में रस-संचार कराना, अचल सौन्दर्य का भावबोध, शरीर से बनाई गई बुलन्द आकृतियाँ और शरीर एवं अवयवों की लयशीलता ही 'छउ' नृत्य की विशिष्टताएँ हैं। अवयवों की भाषा द्वारा शरीर के संकोचन या

स्फुटन सिर्फ ओज को ही संचारित नहीं करते, बल्कि सारी कथावस्तु को मुखर कर देते हैं। कला के दुरूह व्याकरण को जैसे पैनी एवं सूक्ष्म कलादृष्टि से संक्षिप्त कर दिया गया है। 'छउ' भी राग और रंग के मृदुल सौन्दर्य एवं लयपूर्ण सौम्य की मिश्रित देन है।

मुखावरण की संयोजनात्मक तरलता के लिए लचीले, भावपूर्ण और प्रखर अवयवों तथा कुशल अंगुलियों की अपेक्षा है। कथाकली की तरह इसमें मात्र लाक्षणिकता ही नहीं, बल्कि मूक-अभिनय मुद्रा-सिद्धान्तों का अनुसरण करते हैं और स्वभावतः अपने गहरे लाक्षणिक उद्देश्यों को अर्थपूर्ण कला के स्तर पर पहुँचा देते हैं। सम्पूर्ण मुद्राओं की शृंखला में बहुत कुछ शृंखलाबद्ध एवं सजग भी हैं। क्योंकि ओज की अपेक्षा निरन्यौक्तिक सिद्धि ही लक्ष्य है। मुद्राओं की छाया-भाषा शब्दों में प्राण भरकर अन्तर्निहित भावों को सजीवता प्रदान करती है।

आहार्य एवं शृंगार-योजना की चर्चा करते हुए पत्र ने लिखा कि ये केवल समृद्ध गतिशील अथवा स्वप्निल ही नहीं, बल्कि अपने स्वरूप या निर्माण में साफ-साफ मौलिक भी हैं और उनका शास्त्रीय आहार्य से बहुत सामंजस्य है। वाद्य-योजना सरल है जो केवल मृदंग और करताल की पृष्ठभूमि प्रस्तुत कर देते हैं। वाद्य-योजना की भी अपनी लाक्षणिकता है। मात्रा और रागिनी का संचार ढोल करता है और नृत्य की शैलियों को इस तरह स्पंदित करता है कि कांक्षा और धर्म, प्रणय एवं विधान का अद्भुत सन्तुलन प्रस्तुत हो जाता है। ढोल महाकाल का द्योतक है और करताल महाकाश, शून्य तथा गति का द्योतक है। ढोल की लय तथा मुद्राओं की रागिनियाँ, इन दोनों का सामंजस्य समयवाचक तथा रस की सूक्ष्मताओं का परिचायक है। यही राग-लय अभिव्यंजना को आध्यात्म प्रदान करता है और रचना से मिल भी जाता है।

नृत्य विशारदों की दृष्टि में 'छउ' नृत्य

श्री राजेन्द्र शंकर ने 'स्टार आफ इन्डिया' के ७ अक्तूबर, १९३७ ई० के पूजाविशेषांक में लिखा कि कथाकली की तरह लड़कियाँ इस नृत्य में भाग नहीं लेतीं। पात्रानुकूल मुखावरण का प्रयोग होता है। ऐसी बात कथा-कली में एक हद तक छोड़ कर और कहीं नहीं पाई जाती। कथाकली में भी मुखावरण का प्रयोग अब निषिद्ध हो चुका है। 'छउ' नृत्य में लाक्षणिक मुद्राएँ नहीं रहतीं। इसकी गति ही इतनी सजीव और संकेतात्मक है कि सभी इसके प्रति आकर्षित हो जाते हैं। पैरों के काम बहुत विकसित हैं, इसके साथ असाधारण मात्राओं के संश्लिष्ट लयों का प्रयोग अधिक होता है। ढोल और शहनाई की आवाज के साथ ही नर्त्तक लय और प्रतिमा का एक जादू उपस्थित कर देते हैं, परिधान रंगीन एवं प्रवहमान हैं और वहीं पर रंगों का एक यथातथत् उत्सव उपस्थित हो जाता है। पारे जैसी तीव्रता से जब वे उछलते, कूदते, भागते या डरते हैं या जब प्रेम विह्वल राधा अवाक कृष्ण की वंशी श्रवण करती है, या जिस प्राकृतिक सरलता से गर्वीला मयूर अपने पंखों को झाड़ता, फैलाता है, ये सभी इस सूक्ष्म सौष्ठव से सम्पादित होते हैं कि लगता है कि हम थोड़ी देर के लिए एक-दूसरे युग में चले गए हों। ऐसे आनन्द के युग में जब ऐसे नृत्य की कल्पना हो सकेगी और जहाँ हम प्रकृति के उस सौन्दर्य के साथ एकता के दर्शन करते हैं, जब कि कलियाँ अपनी गंधभरी पँखुरियों को गुनगुनाते भौंरों, गाती सरिताओं तथा नाचते-गाते प्रेमाकुल पुरुषों के लिए खोल देती हैं।

भारतीय नृत्य के प्रवर्त्तक श्री उदय शंकर के विचार भी उल्लेखनीय हैं। उन्होंने अपने भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र, अलमोड़ा से ७ मई, १९४० ई०

को महाराजा सरायकेला को एक पत्र लिखा कि सरायकेला की यात्रा उनके विचारों में एक नूतन तथा सुन्दर स्वप्न के समान गूंज रही है और सम्पूर्ण रात्रि का वह प्रदर्शन इतना सुन्दर था, जिसका वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता। उस दिन का वातावरण लय, राग और रंग के एक देश में ले गया जो भूलने की चीज नहीं। उन्होंने यह भी लिखा कि प्रदर्शन तो स्वयं सुन्दर था ही, साथही, उसका प्रभाव उन बच्चों और सयानों की सजग आँखों से और भी बढ़ गई थी, जो आनन्दातिरेक के साथ वहाँ एकत्रित थे। यह एक दुर्लभ मुहूर्त था, जब कि मैंने भावनाओं एवं कुशलता का ऐसा मिश्रण देखा, जिसमें नर्त्तकों और दर्शकों के बीच की खाई विचारों और अनुभूतियों के परस्पर आदान-प्रदान से पट गई थी। मैं इन युवकों की संभाव्यताओं और प्रयोजनीयता से प्रभावित हुआ, क्योंकि ये इतने चित्ताकर्षक तथा नूतन से हैं तथा इनमें इतने ओजपूर्ण चैतन्य हैं कि मैं अचानक यह जान-बूझकर अपनी कल्पना में इन नृत्यों को याद करता रहता हूँ। इसका संगीत, स्थिति एवं पात्र के अनुकूल था और जो कुछ भी देखा मुझे बहुत भाया। लगता है, इससे और कुछ अधिक सुन्दर नहीं हो सकता। पौराणिक रूपकों तथा सामाजिक जीवन के चित्रों की योजना में जो स्वाभाविक विकास हुआ है, उससे छऊ नृत्य में आत्म निर्भरता और कलात्मक पूर्णता की स्थिति भी प्राप्त हो चुकी है, और इनकी अपनी परम्परा, पृष्ठभूमि एवं विशेषताएँ हैं। मेरा दृढ़ विचार है कि प्रयोगों के लोभ में इसकी मौलिकता पर आँच न आए, क्योंकि वही तो इसकी संजीवनी शक्ति और जीवन है।

और, अन्त में हम भारत-कोकिला स्वर्गीया सरोजिनी नायडू की सम्मति से इस प्रसंग को समाप्त करेंगे। उन्होंने लिखा कि छऊ नृत्य में एक सहज ईप्सित सौन्दर्य का दिग्दर्शन होता है। यह नृत्य का एक उग्र फल है। इसका कोई काल नहीं। यह स्फटिक की स्वाभाविक चमक से दीप्त है। यह प्राचीन-समाज की कला-कृतियों से प्राप्य एक अटल आनन्द का उद्रेक करता है, जिसमें प्राचीन कला एवं संस्कृति का सौन्दर्य है। इसकी मुद्रा-शैली

स्थिर मूर्त विश्रामों से ही संचारित हो जाती है। यह लय का एक गति-विज्ञान है। इसकी अपूर्व मुद्राएँ नैसर्गिक एवं स्वयंस्थित नाटकीय भावों से बहिर्भूत होती है, जहाँ शरीर का कोई भी अंग निष्क्रिय नहीं और सभी अवयव गति के साथ मचलते हैं। पदकौशल और कुछ नहीं, सिर्फ विभूषणात्मक विवरणों का ताना-बाना है। मुखावरण तो इतने कलापूर्ण हैं और भावव्यंजन में समृद्ध हैं कि चरित्र-चित्रण के आन्तरिक सामंजस्य से इनका पूरा मेल है।

श्रीमती सरोजिनी नायडू ने अन्त में लिखा :—सरायकेला के छाया-नृत्यों से मुझे इस बात का आभास हुआ कि लोक-नृत्य इतना उत्कृष्ट और सुन्दर हो सकता है। इसमें एक ही साथ गति के नाटकीय ओज और विवरणपूर्ण काव्यात्मक एवं मृदुल सौन्दर्य भी है। नर्त्तकों का पद-कौशल विशेष श्रद्धा उत्पन्न कर सका। संगीत, परिधान, रंग-योजना और साधारण वातावरण सभी नृत्य की शैली और वस्तु-विषयों के पूर्णतः अनुरूप हैं।

श्रीमती नायडू के मतानुसार छऊ नृत्य से भारतीय नृत्य की अनुभूति में एक नूतन आनन्द के अध्याय का योग हुआ है और वह्नित तालों एवं पूर्णरूप से स्पष्ट भावों की एक नई सृष्टि हुई है।

KATAK AKADAMI LIBRARY
Acc. N. 17076
Date 4.2.87
NEW DELHI

793.546
Ver-Ch